R.N.I.No.-CHHHIN/2015/59925 **डाक पंजीयन संख्या**

सुदूर आदिवासी क्षेत्र की लोक संस्कृति एवं आधुनिक साहित्य को समर्पित त्रैमासिक

संपादकीय कार्यालयः—

'बस्तर पाति'

सन्मति इलेक्ट्रीकल्स, सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास,

जगदलपुर, जिला—बस्तर, छ.ग. पिन—494001

मो.—09425507942 ईमेल—paati.bastar@gmail.com

बस्तर पाति

जल्दी ही इंटरनेट पर—www.paati.bastar.com

मूल्य पच्चीस रूपये मात्र•अंक—3,दिसम्बर—फरवरी 2015

प्रकाशक एवं संपादक

सनत कुमार जैन

सह संपादक

श्रीमती उषा अग्रवाल 'पारस'

शशांक श्रीधर

महेन्द्र कुमार जैन

शब्दांकन

अनूप जंगम

मुख पृष्ठ

श्री बंशीलाल विश्वकर्मा

रेखांकन

श्री सुरेश विश्वकर्मा

प्रभारी उत्तरप्रदेश

श्री शिशिर द्विवेदी

सहयोग राशि—साधारण अंकः पच्चीस रूपये एकवर्षीयः एक सौ रूपये मात्र, पंचवर्षीयः पांच सौ रूपये मात्र, संस्थाओं एवं ग्रंथालयों के लिएः एक हजार रूपये मात्र। सारे भुगतान मनीआर्डर व ड्राफ्ट ***सनत कुमार जैन*** के नाम पर संपादकीय कार्यालय के पते पर भेजें या स्टेट बैंक ऑफ इंडिया के खाता क्रमांक **10456297588** में भी बैंक कमीशन जोड़कर सीधे जमा कर सकते हैं।

प्रकाशक, मुद्रक, संपादक, स्वामी सनत कुमार जैन द्वारा सन्मति प्रिन्टर्स, सन्मति इलेक्ट्रीकल्स, सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर से मुद्रित एवं जगदलपुर के लिए प्रकाशित

सभी रचनाकारों से विनम्र अनुरोध है कि वे अपनी रचनाएं कृतिदेव 14 नंबर फोण्ट में एवं एक्सेल, वर्ड या पेजमेकर में ईमेल से ही भेजने का कष्ट करें जिससे हमारे और आपके समय एवं पैसों की बचत हो। रचना में अपनी फोटो, पूरा पता, मोबाइल नंबर एवं ईमेल आईडी अवश्य लिखें। के प्रत्येक पेज में नाम एवं पता भी लिखें।

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से बस्तर पाति, संपादक मंडल या संपादक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। रचनाकारों द्वारा मौलिकता संबंधी लिखित/मौखिक वचन दिया गया है। संपादन एवं संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यवसायिक। समस्त विवाद जगदलपुर न्यायालय के अंतर्गत।

पाठकों से रूबरू/2
पाठकों की चौपाल/5
बहस/कहानी की शर्तें/7
बहस/पाठकों के नाम बस्तर पाति का ख़त/13
साक्षात्कार/लालाजी की कविताएं/14
लालाजी से बातचीत/महावीर अग्रवाल/16
संस्मरण/रऊफ परवेज़/19
संस्मरण/वसंत वि.चव्हाण/21
संस्मरण/डॉ.धनंजय वर्मा/22
संस्मरण/बी.एल.विश्वकर्मा/26
संस्मरण/किरणलता वैद्य/28
काव्य/पूनम वासम/32
संस्मरण/नरेन्द्र पाढ़ी/33
संस्मरण/बी.एन.आर.नायडू/34
संस्मरण/धनेश यादव/35
संस्मरण/डॉ.रूपेन्द्र कवि/35
संस्मरण/लक्ष्मीनारायण पयोधि/36
संस्मरण/त्रिलोक महावर/38
संस्मरण/हिमांशु शेखर झा/40
संस्मरण/मोहिनी ठाकुर/41
संस्मरण/डॉ.सुरेश तिवारी/42
संस्मरण/नवनीत कमल/44
संस्मरण/शशांक शेण्डे/45
संस्मरण/भरत कुमार गंगादित्य/46
लघुकथा/पवन तनय अग्रहरि/47
लघुकथा/बालकृष्ण गुप्ता 'गुरू'/47
संस्मरण/राजीव रंजन प्रसाद/48
पुस्तक अंश/लालाजी समग्र/49
काव्य/मनु स्वामी/51
काव्य/डॉ.जयसिंह अलवरी/51
काव्य/कीर्ति श्रीवास्तव/52
काव्य/एम.दंतेश्वरी राव/52
काव्य/कुमार शर्मा अनिल/53
काव्य/सुमन शेखर/53
काव्य/के.प्रिया/54
काव्य/विमल जैन/54
काव्य/सुमय्या काशिफ/54
काव्य/चक्रधर शुक्ल/55
काव्य/पूर्णिमा सरोज/55
काव्य/नज़्म सुभाष/56
काव्य/कृष्ण मोहन अम्भोज/56
काव्य/सरिता पाण्डेय/56
काव्य/रामचरण यादव 'याददाश्त'/57
काव्य/डॉ.भगवानदास जैन/57
काव्य/सुरेश चितेरा/57
काव्य/तरूण कुमार लाहा/58
नक्कारखाने की तूती/59
पत्रिका मिली/60
साहित्यिक उठापटक/61
कविता कैसे बदले तेरा रूप/63
फेसबुक वॉल से/63

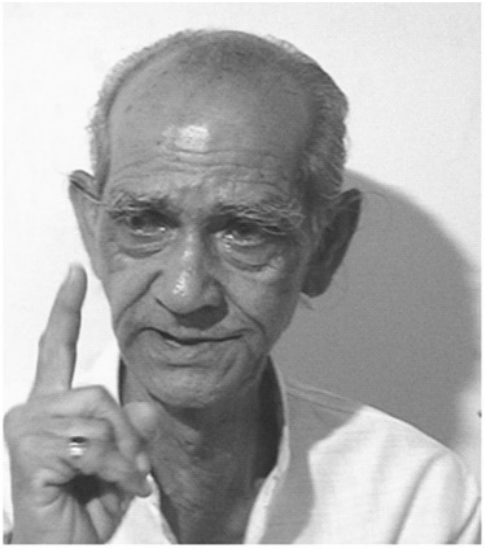

पाठकों से रूबरू

साहित्य की सामाजिक भूमिका का विवरण यत्र–तत्र–सर्वत्र मिल जाता है। बहुतों की जुबान से होता हुआ पुस्तकों में दर्ज हो चुका है। साहित्यकार की सामाजिक भूमिका का प्रत्यक्ष प्रमाण, चश्मा आंखों में चढ़ते ही साफ दिखाई देने की तरह नजर तो नहीं आता है परन्तु भूमिका तो होती ही है। न जाने कितने ही गीत, लोककथायें जो दादी–नानी की जुबान से होती हुई हम तक पहुंचती हैं, वे किसी न किसी साहित्य प्रेमी की अलिखित/लिखित रचनायें होती हैं। इन रचनाओं से सामाजिक समरसता के बोल ही फूटते हैं, अनजाने भय से हिम्मत के साथ लड़ पाने का आत्मविश्वास फलता फूलता है। रीतिरिवाज संस्कारों को पीढ़ी दर पीढ़ी पहुंचाने का भी यही माध्यम होती है। क्षेत्र की बोली, भाषा और विशिष्ट पहचान को सहेजने वाला साहित्य ही होता है। क्षेत्र विशेष का इतिहास दर्ज कराने का काम भी साहित्य के खाते में रखा जाता है। अगर साहित्य और साहित्यकार न होते तो हम कैसे जान पाते कि मीरा, कबीर, तुलसी, रहीम, रैदास की अमिट स्याही से भजन दोहों के साथ ही साथ उस वक्त का दौर भी रचा तो जा रहा था। इस देश के समृद्ध साहित्य में तो इतिहास, भूगोल के साथ–साथ विज्ञान और आयुर्वेद भी रचा गया है। बहुत कुछ गुरू शिष्य परम्परा से होता हुआ आगे बढ़ा तो कुछ शिलालेख, भित्तिचित्र, ताड़पत्र लेखन, ताम्रपत्र लेखन आदि से हम तक पहुंचा है। इन सभी को सहेजने में एक और विधि का सहारा लिया गया है जो सीध ो समझ नहीं आती परन्तु हमारे ही सामने है और वह है–साहित्य को धर्म के माध्यम से हम तक लगातार जोड़े रखना। ध ार्म ही था, है और शायद रहेगा भी जिससे साहित्य समय के इस बिन्दु से आगे तक, अनंत बिन्दु तक जायेगा। साहित्य रचना और उसे लोगों के बीच ले जाना जितना महत्वपूर्ण कार्य है उतना ही महत्वपूर्ण है उसे सहेजना। किसी साहित्यकार के साहित्य को सहेजकर हम उस साहित्यकार को भी इतिहास पुरूष बनाते हैं। हम अपने देश के महान साहित्यकारों की रचनावाली प्रकाशित करके और उनके जन्मदिवस, महाप्रयाणदिवस आदि स्मरण कर उन्हें अपने समय के परिपेक्ष्य में समझने का प्रयास करते हैं, उन्हें पढ़कर स्वयं का आकलन करते हैं, उसके बाद अपने समय को सही ढंग से चित्रित करने का प्रयास करते हैं। अपने उलझे विचारों को एक दिशा देने का भी यह एक महत्वपूर्ण माध्यम होता है। अपने देश के महान रचनाकारों की सूची में अपने राज्य, अपने जिले और फिर जनपद के रचनाकारों को भी बराबर स्थान देते हैं, बल्कि हमारे अपने जनपद के नजदीक के रचनाकारों का स्मरण, उनका साहित्य हमारे लिए ज्यादा मददगार होता है।

हिन्दी के वर्तमान के परिदृश्य से यह सीखने को मिलता है कि 'घर के देव ललायें, बाहर बांबी पूजन जायें'। हिन्दी में अनुदित विदेशी कूड़ा इतना फैला दिया गया है कि हम हमारे बाप को भी बाप मानने को तैयार नहीं हैं। 'बाल की खाल' वाला उत्तर आधुनिक साहित्य गोरी चमड़ी का दीवाना है। इस उत्तर आधुनिक विचार को प्रगतिशील लोग आंदोलन बना देने पर तुले हुए हैं। इस वैचारिक क्रांति के अध्येता अपने पीछे आशावान दृष्टि को वैचारिक रूप से अपाहिज बनाकर विदेशी वैसाखी के सहारे चलने को मजबूर कर रहे है। रहते–खाते यहां हैं और संस्कृति विदेशी पसंद है। विचार वहां के क्रांतिकारी हैं। वहां के लेखक नवीनता धारे हैं।

अपने–अपने क्षेत्र के साहित्यकारों को खोजकर उन्हें मुख्यधारा में लाने के साथ ही, पुराने साहित्यकारों की रचनाओं का संकलन, संचयन भी अति आवश्यक है। इस भुलावे के दौर में व्यक्ति खुद ही भुलावे में रहता है। स्वयं के विज्ञापन, प्रकाशन में व्यस्त होता है तब यह स्थिति बड़ी विकट महसूस होती है। बहुत से लोग तो पुराने साहित्यकारों की आलोचनाओं से ही 'विशाल' साहित्यकार बन जाते हैं।(बड़े नहीं)

लघु पत्रिकाओं का औचित्य इस दिशा में कुछ ज्यादा ही उद्देश्यपरक हो जाता है। उनका कर्तव्य और बढ़ जाता है।. दिल्ली, लखनऊ, भोपाल वाले भले ही किसी क्षेत्र विशेष के रचनाकारों को खोजकर न छापें पर उस क्षेत्र विशेष की लघु पत्रिका से यही उम्मीद रखी जाती है। बहुत सी लघु पत्रिकायें सारे देश को समेटने का प्रयास करती हैं सिवाय अपने क्षेत्र के साहित्यकारों को छोड़कर। कुछ लघु पत्रिकायें लगातार अपने क्षेत्र के लोगों को मौका देती हैं और उन्हें मुख्यधारा का पथिक बना देती हैं।। 'बस्तर पाति' इन्हीं कुछ लघु पत्रिकाओं की श्रेणी में आना चाहती है। इस कार्य के लिए हमारी पत्रिका का आधा भाग समर्पित होगा। हम अपने क्षेत्र के अमर साहित्यकारों को लगातार प्रकाशित कर उनकी रचनाओं को देश के मध य रखेंगे। उन अमर साहित्यकारों की स्मृति सदैव तरोताजा रहे और साथ ही उन्हें उनका वास्तविक सम्मान मिले। जब वर्तमान दौर ही इस बस्तर क्षेत्र को वैचारिक रूप से पिछड़ा मानता हैं तो समझा जा सकता है कि बीता दौर किस हद तक क्रूर रहा होगा। तमाम मुश्किलों के बावजूद इस क्षेत्र ने साहित्यिक गतिविधियां जीवंत बनायें रखीं थीं। लाला जगदलपुरी, शानी (काला जल), करील, लक्ष्मीचंद जैन, डॉ. के.के.झा, के.एम.श्रीवास्तव आदि तो अमर हैं ही; वर्तमान के परिपक्व साहित्यकारों में से

बहादुर लाल तिवारी, कृष्ण शुक्ल, के. एल. श्रीवास्तव, रऊफ परवेज़, मोहिनी ठाकुर, शांति तिवारी, शमीम बहार, नूर जगदलपुरी, ऋषि शर्मा ऋषि' आदि हैं। उसके अलावा वे साहित्यकार जिनमें बस्तर का साहित्यिक समाज संभावनायें तलाशता है वे हैं योगेन्द्र राठौर, उर्मिला आचार्य, विजय सिंह, डॉ. सुरेश तिवारी, शफीक रायपुरी, खुदेज़ा खान, सुषमा झा, नरेन्द्र पाढ़ी, शरदचंद्र गौड़, शशांक शेण्डे आदि(जगदलपुर), चितरंजन रावल, सुरेन्द्र रावल, राजाराम त्रिपाठी, यशवंत गौतम, बरखा भाटिया आदि(कोण्डागांव), दादा जोकाल आदि(दंतेवाड़ा), संतोष श्रीवास्तव आदि(कांकेर), शिव कुमार पाण्डे, शिव शंकर कुटारे आदि(नारायणपुर) आदि हैं। भविष्य का साहित्यकार समाज जिनमें उमड़ रहा है वे हैं विक्रम सोनी, भरत गंगादित्य, हेमंत बघेल, जय मरकाम, सुनील कुमार लम्बाड़ी(भोपाल पटनम) आदि। बस्तर से जिनका जुड़ाव है वे भी बस्तर भूमि के ही हैं मान कर बस्तर आशान्वित है उनमें से प्रमुख हैं पूर्णचंद रथ, लक्ष्मी नारायण 'पयोधि', त्रिलोक महावर राजीव रंजन प्रसाद आदि।

इसके इतर भी अनेक रचनाकार हैं जो निस्वार्थ भाव से लेखन कर रहे हैं। साहित्य की सेवा में लीन हैं। त्रासदी यह है कि इतने सारे नामों के होते हुए भी बस्तर क्षेत्र साहित्यिक, वैचारिक दृष्टिकोण से पिछड़ा हुआ है। बड़े पुरस्कारों, सम्मान से अछूता और वंचित है। सारे रचनाकारों ने नये विचारों के साथ–साथ अपने समय का मूल्यांकन भी किया हैं परन्तु स्थिति विकट है।

प्रस्तुत अंक लालाजी को समर्पित है, कायदे से तो पहला ही अंक उन पर केंद्रित होना था, भूल सुधारते हुए यह अंक उनके चरणों में श्रद्धा सुमन स्वरूप अर्पित है। इस क्षेत्र की विशिष्टता, प्राकृतिक संपदा के भरपूर होने की तरह इस क्षेत्र की विशिष्टता, प्रकृति के निकट रहने की, बगैर किसी ताम–झाम और बगैर नाम की चाहत में, बिल्कुल इसी तरह हमारे साहित्यिक प्रकाश स्तंभ, लालाजी जीवन पर्यन्त रचनाशील, मनन शील रहे। उन्होंने इस क्षेत्र की बोली भाषा के संरक्षण में मूलभूत कार्य किये हैं। उनका लेखन समुद्र आज के लेखकों के लिए प्रेरणास्रोत बना है। उनकी रचनाओं के अंबार में से कुछ रचनायें इस अंक को सम्मानित करेंगी। बस्तर पाति का यह गौरवांक उनके आशीर्वाद का आकांक्षी है। उन्होंने साहित्य रचने के साथ वैचारिक आंदोलन भी खड़ा किया था। उनके समय में लगातार होने वाली गोष्ठियों ने वर्तमान के अनेक लेखकों को जन्म दिया और तराशा भी है। उन्होंने सीमित संसाधनों की सहायता से क्षेत्रीय बोली–भाषा के लिए मूलभूत कार्य किये। मुहावरों का संकलन, शब्दकोश की परिकल्पना, व्याकरण का लिप्यांतरण आदि कार्य किये। वर्तमान के समस्त शोध कार्य जिनके भी द्वारा किये जा रहे हैं वे उनके आधारभूत कार्यों पर ही आधारित हैं। ग़ज़ल गीत, लोक कथायें, रूपक न जाने क्या–क्या लिखा उन्होंने। उन्होंने तो हल्बी, भतरी स्थानीय भाषा में ग़जल लिखकर प्रयोग भी किये। लेखन के प्रति उनकी दीवानगी ही थी जो उन्होंने साहित्य से ही विवाह करके प्लेटिनम जुबली भी मनाई।

लालाजी अपने जीवन में स्वयं के लिए किसी सम्मान की अपेक्षा नही ंकी, परन्तु समय और साहित्यिक समाज भी इस ओर अपनी आंखें मूंदा रहा। यह सही है कि लेखन की गहराई ही उसे पुरूस्कृत करती है परन्तु हम साहित्यिक लोगों का कर्तव्य भी कुछ बनता है कि नहीं। बस्तर पाति इसके लिए प्रयास करेगा। अपने अंकों में लालाजी पर केन्द्रित एक पेज हमेशा आरक्षित रखेगा। और आह्वान है अपने सुधि पाठकों एवं लेखकों से कि वे लालाजी की रचनाओं के साथ समीक्षा भेजें उन्हें उचित स्थान दिया जायेगा।

बस्तर विश्वविद्यालय से अनुरोध है कि वह जल्द से जल्द हमारे लालाजी को डाक्टरेट की मानद् उपाधि प्रदान कर स्वयं को गौरवान्वित करे।

मिमयाती जिन्दगी दहाड़ते परिवेश।

लालाजी द्वारा रचित अनंत साहित्य को अध्ययन और उस पर चिन्तन, दुरूह और श्रमसाध्य है, क्योंकि वह साहित्य या तो चोरी हो चुका है और बहुत से लोगों ने जरा–जरा सा हेरफेर कर उस पर अपना नाम दर्ज कर लिया है या फिर साहित्य नष्ट हो गया है। लालाजी रचित साहित्य को सुरक्षित रखने के लिए किसी भी प्रकार का निस्वार्थ प्रयास नजर नहीं आ रहा है। किसी दूसरे पर दोष डालने से ज्यादा अच्छा होगा कि इसे वर्तमान का दोष मान लें–लालाजी की ही रचना ने यह कह पूर्वानुमान लगा लिया था–

विकल करवटें बदल–बदल कर/भोगा हमने बहुत जागरण,/गहराई चुप बैठे सुनती/'सतह' सुनाते जीवन दर्शन।
देव–दनुज के संघर्षों का/हमने यह निष्कर्ष निकाला,/'नीलकण्ठ' बनते विषपायी/जब–जब होता अमृत–मंथन।
सफल साधना हुई भगीरथ/नयनों में गंगा लहराई,/सांठ–गांठ में उलझ गये सुख,/पीड़ा आई पीड़ा के मन।

ऐसे–ऐसे संदर्भों से/जुड़–जुड़ गई सर्जना अपनी,/हृदय कर रहा निन्दा जिनकी/मुंह करता है उनका कीर्तन।

कविता क्रमांक–3 की प्रथम चार पंक्तियों में सतत् रचनाशील, निस्वार्थ और सरल व्यक्तित्व के धनी साहित्य हृदय की व्यथा ही है। स्पष्ट शब्दों में कहें तो 'थोथा चना बाजे घणा'। अंतिम चार पंक्तियों में तो उन्होंने और स्पष्ट कर दिया, कि जिन रचनाओं में दम ही नहीं हैं वे ही बार–बार छापी/सुनाई जाती है। वर्तमान की तुलना लालाजी की इस रचना के काल से करें तो पातें है कि मात्र समय बदला है। इन्हीं संदर्भों को लेकर जीवन की सच्चाई को दिखाने वाली इस कविता पर दृष्टि डालिए–

करनी को निस्तेज कर दिया,/इतना चालबाज कथनी में;

श्रोता बन बैठा चिंतन/मुखरित मुख मसखरे रह गये। **(कविता क्रमांक–4)**

क्या वह जीवन की सच्चाई नहीं रह गई है। कविता के नाम परोसे जाने वाले हास्य और द्विअर्थी संवाद सृजन ने ही ''कविता को'' जिन्दा रखा है–

आंगन की व्यापकता का/ऐसा बंटवारा किया वक्त ने

आंगन अंतर्ध्यान हो गया,/और सिर्फ दायरे रह गये। **(कविता क्रमांक–4)**

गागर में सागर का अनुपम उदाहरण हैं ये चंद पंक्तियां जो प्रगतिशीलता के वर्तमान पैमाने पर उंगलियां उठातीं हैं। ये कैसी प्रगतिशीलता है जिसमें जोड़कर रखने के उपाय नदारत होते जा रहे हैं। स्थाई रूप से तोड़ने की परम्परा जोर–शोर से हाथोहाथ लेकर अपनाई जा रही है। आंगन जो परिवार को जोड़कर रखने का उपाय था वह अब घरों में होता ही नहीं हैं इसकी जगह दिवारें खींच दी जाती हैं जिससे लोग आपस में शक्ल न देख सकें।

लाचारों और लाचारी के प्रति संवेदनशीलता, लालाजी की लेखनी की धार बराबर बनाये रखती थी, उन्होंने अगर हिन्दी के अलावा स्थानीय बोली में भी सृजन किया तो उनकी संवेदनशीलता बराबर उनके साथ खड़ी रही।

जाने क्या हो गया अचानक/परिवर्तन के पांव कट गये। **(कविता क्रमांक–4)**

पंक्तियों की गहराई तो देखें दुनिया परिवर्तन की बात करती है पर जहां गरीबों की बात आती है वहां परिस्थिति नहीं बदलती है–

रीते पात्र रह गये रीते,/भरे पात्र सब भरे रह गये। **(कविता क्रमांक–4)**

अंतिम पंक्तियां देखें–

भाव शून्य शब्दों का कोश/बांट रहे हैं रीते लोग। **(कविता क्रमांक–4)**

सच्चाई की अभिव्यक्ति कितने सुंदर तरीके से की गई हैं। विकास की इस दौड़ में 'समय बदल गया' जरूर कहा जाता पर लालाजी के समय और वर्तमान में इन पंक्तियों का ही तो जीवन दर्शन नजर आता है।

फूल जब चुभ गये, तो मन को लगा,/है बड़ी विश्वस्त कांटों की चुभन। **(कविता क्रमांक–4)**

धोखे का दुख, जानकारी के दुख से गंभीर चोट करता है। फूलों से चोट लगने की आशंका शून्य होती है पर उनसे ही चोट लग जाये तो कांटे ज्यादा अच्छे लगते है, कम से कम हमें पता तो होता है वो गड़ेंगे नहीं–

रोशनी कहां तुझसे हटकर और मन/ना चंदा के घर ना सूरज के घेरे **(कविता क्रमांक–10)**

धर्म और आध्यात्म का सार इन दो पंक्तियों में उड़ेल दिया हैं कवि ने। ज्ञान का उजियारा अपने भीतर ही होता है भले ही हम बाहर ढूंढते हैं– उजले कपड़े–वालों में तो सूरज, चांद तारों में।

यूं लालाजी के संग्रह 'मिमयाती जिन्दगी दहाड़ते परिवेश' की कविताओं का संपूर्ण विवेचन कविताओं की गहराई के साथ –साथ लालाजी की सोच की गहराई, उनके अध्ययन की गहराई को भी हमारे समक्ष रखता है। उनके जीवन को उनकी कविताओं से समझा जा सकता है। वे कबीर की तरह फक्कड़ कवि थे और उनकी ही तरह संत थे, जो स्वयं के लिए शून्य की अपेक्षा रखते हुए, दुनिया को न्यासंगत देखना चाहते थे। उनका अविवाहित रहकर ज्ञान की खोज में लगे रहना और फिर ज्ञान की अनंत ऊंचाई को पा लेना अचंभित करता है। अपने काव्य में उन्होंने नये बिम्बों के माध्यम से अपनी बात रखी है। शोषित वर्ग के साथ लगातार खड़े रहे। उनकी यह प्रगतिशीलता उन जैसी नहीं है जो हर बात पर क्रांति की तलवार लेकर खड़े हो जाते हैं। हर सामाजिक विसंगतियों को बारीक नजर से देखकर लोगों के बीच लाया उन्होंने। सीधे चोट करने के स्थान पर वे गहराई से सांकेतिक चोट करते हैं। वर्तमान के साहित्यिक/असाहित्यिक लोगों को उनके ही शब्दों में संदेश है कि– भाव शून्य शब्दों का कोश/बांट रहे हैं रीते लोग।

पाठकों की चौपाल

'बस्तर पाति' का सितम्बर अंक प्राप्त हुआ, हार्दिक धन्यवाद। सुदूर आदिवासी क्षेत्र से साहित्यिक प्रकाशन करना,तलवार की धार पर चलने के समान है। कविताएं, गज़लें, कहानियां दिल को छू लेने वाली हैं। प्रेमचंद की 'कफन' और 'कफन के बहाने' देकर आपने अंक को प्रभावी बना दिया है। किसी लेखक का चित्र उपलब्ध न होने की स्थिति में खाली बॉक्स न देवें। शुभकामनाएं!

संतोष सुपेकर, 31, सुदामा नगर, उज्जैन(म.प्र.)

आदरणीय सुपेकर जी आपकी अमूल्य सलाह के लिए बहुत –बहुत धन्यवाद। 'बस्तर पाति' हमेशा अपने पाठकों एवं लेखकों के सुझावों का स्वागत करती है।

संपादक बस्तर पाति

'बस्तर पाति' का अंक–2 प्राप्त हुआ। आभारी हूं। अंक मैंने बड़ी रूचि के साथ पढ़ा। अच्छा लगा। अपने सम्पादकीय एवं बहस आदि के माध्यम से आपने जो मुद्दे उठाये हैं, वे बड़े सटीक, सामायिक एवं सार्थक हैं। रचनायें पठनीय हैं। नये रचनाकारों को आगे लाने का आपका संकल्प प्रशंसनीय है। साहित्य एवं रचनात्मकता से विमुख होती जा रही नयी पीढ़ी की सोच में परिवर्तन लाने के लिए यह अत्यंत आवश्यक है। बस्तर की प्राचीन संस्कृति को देश के पटल पर स्थापित करने के आपके प्रयास यशस्वी हों, यही शुभकामना है।

श्रीकृष्ण कुमार त्रिवेदी, द्वीपान्तर, लाल बहादुर शास्त्री मार्ग, फतेहपुर, (उ.प्र.) फोन–05180222828

आदरणीय सम्पादक महोदय, प्रणाम,

आप द्वारा सम्पादित बस्तर पाति अपने अग्रज द्वारा पढ़ने मिली। सुदूर आदिवासी क्षेत्र से लोक संस्कृति को समर्पित यह पहली पत्रिका है जो साहित्यिक भी है। आपके पूरे पत्रिका परिवार को बधाईयां! पत्रिका का नाम, सम्पादन, संयोजन एवं रचनाएं सब बढ़िया हैं। साक्षात्कार, बहस नवहस्ताक्षर कॉलम जारी रखें। आपने बस्तर से एक पत्रिका का प्रकाशन कर बड़े ही उत्साह का काम किया है, आज पत्रिका प्रकाशन बहुत आसान नहीं है। इसकी निरंतरता बनाऐ रखें। वार्षिक या एक प्रति की भी सहयोग राशि रखें तो अच्छा होगा।

नदीम हसन चमन, द्वारा डॉ.मानो बाबू, रिकाबगंज, टिकारी, गया–824236 मो.–09852612119

आदरणीय नदीम जी, नमस्कार,

आपने पत्र के माध्यम से बस्तर पाति के सम्बंध में अपने विचार रखे, धन्यवाद। आपके सुझाव पर अमल किया जा रहा है। इस अंक के साथ वार्षिक सदस्यता की राशि भी प्रकाशित की जा रही है। आपके अमूल्य विचार एवं प्रतिक्रिया के लिए पुनः धन्यवाद।

सम्पादक बस्तर पाति

प्रिय बन्धु, दीर्घायु हों! स्वस्थ, मस्त, व्यस्त रहें। बस्तर पाति के दोनों प्रारंभिक अंक मिले। अंक–2 मेरे सामने है। आपकी हिम्मत की दाद देना चाहता हूं कि एक अहिन्दीभाषी, सुदूर आदिवासी क्षेत्र से हिन्दी की पत्रिका निकालकर आपने जीवटता का काम किया है। पत्रों एवं रचनाओं से लगा कि हिन्दी के अनेक कवि, लेखक आपसे जुड़ चुके हैं। प्रख्यात चित्रकार श्री नवल जायसवाल जी की पीड़ा अपनी जगह उचित है। अनायास ही जाने–अनजाने हम ही लोग मातृभाषा के शब्दों के साथ मज़ाक कर बैठते हैं। यह अवश्य रोका जाना चाहिए। बस्तर पाति फीचर्स के अंतर्गत 'साहित्य का जमाना नहीं' विचारोत्तेजक लेख है। काव्यपक्ष भी काफी मजबूत है। पत्रिका प्रकाशन और सम्पादन के लिए आप बधाई के पात्र हैं।

ज्ञानेन्द्र साज, सम्पादक 'जर्जर कश्ती', 17/212 जयगंज, अलीगढ़–202001, मो.–09219562656

त्रैमासिक पत्रिका 'बस्तरपाति' का सि.–न. 2014 का अंक अवलोकनार्थ मिला। ये अंक विविधपूर्ण साहित्यिक सामग्रियों से सरोबार है। पत्रिका की साजसज्जा और रेखांकन सराहनीय है। भविष्य में प्रकाशित पत्रिका के अंकों में यात्रा संस्मरण, स्थल वर्णन, समीक्षाएं, विचारोत्तेजक लेख, लोक साहित्य संवर्धन और संरक्षण के प्रयासों का समावेश होगा। खासकर रूसी लेखन शैली 'सॉनिट' के रचनाकारों को प्रोत्साहन मिलेगा। फाल्गुनी शुभकामनाओं सहित।

सी.एस.बेसेकर, सहायक निदेशक(कार्यक्रम), आकाशवाणी,नागपुर, महाराष्ट्र

बंधुवर सनत जी सप्रेम नमस्कार

नागपुर में ऊषा अग्रवाल जी के यहां बस्तर पाति का प्रथम अंक देखा था, उसका आवरणपृष्ठ ही स्वयं बोल कर बता रहा था कि यह लोकजीवन–संस्कृति को प्रतिबिंबित करती पत्रिका है। अब आपके द्वारा प्रेषित द्वितीय अंक अभी विगत दिवस प्राप्त हुआ, पत्रिका खोलने से पहले ही इस बार भी आवरण पृष्ठ अंदर की कथावस्तु का आभास करा गया। आपकी कल्पनाशक्ति व प्रस्तुतिकरण प्रशंसनीय है, पत्रिका के माध्यम से आप विस्तृत रूप में बस्तर व उस क्षेत्र के अंतरंग पृष्ठ–जीवन शैली का परिचय संपूर्ण राष्ट्रिय परिदृश्य पर उजागर करने का सराहनीय प्रयास कर रहे हैं, यह हिन्दी ही नहीं राष्ट्र के विकास–समरसता की दिशा में किया गया सार्थक प्रयास है। इसके साथ ही संभव हो तो वहां की लोक भाषा के वनवासी बंधुओं द्वारा गाये जाने वाले गीत व उनका भावार्थ भी यदि प्रकाशित हो सके तो और भी अच्छा हो सकता है। मेरी शुभकामनाएं एवं पत्रिका प्रेषण हेतु आभार स्वीकारें।

डॉ. श्रीहरि वाणी, सम्पादक 'वैश्य परिवार' 92/143 संजय गांधी नगर, नौबस्ता, कानपुर–208021 मो.–09450144500

बंधुवर सनत जी सप्रेम नमस्कार

अत्र कुशलं तत्रास्तु। सुदूर जगदलपुर से आपने सुसम्पादित त्रैमासिक पत्रिका 'बस्तर पाति' भेजी और इस नाचीज़ को याद किया–इसके लिए मैं तहेदिल से शुक्रगुज़ार हूं। कोई पंद्रह बरस पहले एक बार जगदलपुर जाना हुआ था, आज बस्तर पाति को पढ़ते–पढ़ते अनेक सोई हुई स्मृतियां जाग उठीं। यकीनन इसका श्रेय आपको ही है।

पत्रिका वास्तव में बहुआयामी है। प्रस्तुत अंक में 'पाठकों से रूबरू' शीर्षक आपका सम्पादकीय, वर्तमान युग में वृद्वों/बुजुर्गो की दुर्दशा की सही व गंभीर पड़ताल करता है। श्रीमती मोहिनी ठाकुर से भी सनत जैन का साक्षात्कार संक्षिप्त, सार्थक व संतुलित है। श्री सनत जैन के एक प्रश्न के उत्तर में श्रीमती मोहिनी ठाकुर ने बस्तर की साहित्यिक स्थिति का जो परिचय दिया वह पाठकों की जानकारी में इजाफा करता है। जनाब रऊफ परवेज़ की ग़ज़लों का तो मैं मुरीद रहा हूं। यह बात मैंने एक ग़ज़लकार होने के नाते कही है। श्रीमती मोहिनीजी द्वारा प्रस्तुत चारों कविताएं भी बड़ी संवेघ हैं।

अंकस्थ कविताएं और ग़ज़लें भी मुझे बड़ी प्यारी लगीं। लघुकथाएं भी काफी व्यंजक और चुटीली हैं। विशेषतः डॉ. अशफॉक की लघुकथाएं क़ाबिलेतारीफ हैं। जैन करेलवी का मोबाइल पुराण दिलचस्प है। जनाब नसीम आलम नारवी की ग़ज़लें पुरअसर हैं नव हस्ताक्षर कु. अंजली सिन्हा में हमें भावी संभावनाएं नज़र आती हैं। बस्तर पाति पढ़ने के बाद यह कहने में मुझे तनिक भी संकोच नहीं है कि निस्संदेह पत्रिका सुदूर आदिवासी क्षेत्र की लोक संस्कृति एवं आधुनिक साहित्य का एक स्वच्छ दर्पण है। आपका प्रयास श्रमसाध्य एवं सन्निष्ठ सम्पादकत्व, अशेष मंगलकामनाओं एवं बधाईयों का हकदार है। इत्यम! शुभमस्तु!

डॉ. भगवानदास जैन, बी.–105 मंगलतीर्थ पार्क, केनाल के पास, जशोदानगर रोड, मणीनगर(पूर्व) अहमदाबाद–382445 मो. –09426016862

'बस्तर पाति' त्रैमासिक पत्रिका में नवोदित रचनाकारों को प्रकाशन में प्राथमिकता देना सम्पादक श्री सनत जैन जी की उच्चप्रेरणा है तथा 'अरण्यधारा–1' कविता संकलन बस्तर पाति का अनूठा प्रयास है। सम्पादक द्वय को हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं जिन्होंने 'अरण्यधारा–1' में बस्तर क्षेत्र के साहित्यकारों का काव्य संकलन प्रकाशित कर सुदूर बस्तर को गौरवान्वित हुआ है, साथ ही समूचा छत्तीसगढ़ राज्य भी अछूता नहीं है।

अरण्यधारा–1 में श्री विमल तिवारी जी की पांच रचनाएं प्रकाशित हुई हैं। श्री तिवारी जी की रचना 'पर्वत गुनगुनाने लगे' में पावस ऋतु का सजीव चित्रण है। 'बूंदों की टप–टप ने नयी धुन निकाली, पर्वत भी संग–संग गीत गुनगुनाया' पंक्तियों में मानवीकरण अत्यंत मनोहारी है।

दूसरी रचना 'आंसू भेया के' में कवि ने अतीत के मर्मान्तक क्षणों को कविता मे उकेरा है। कवि ने जो भोगा, जैसा जीवन जिया उसकी स्मृति ही रह गई है जो पीड़ा देती है। अंतर्पीड़ा को देखिए–व्यर्थ दुःख से घिरा हूं, ममता का श्रोत नहीं मिला।/ मंजिल लंबी है अपनत्व की, अपनेपन का आभास मुझे नहीं।'

'जीने की तमन्ना' समसामायिक यथार्थ के धरातल पर लिखी गई रचना है। प्रेम और सहयोग की सीख का क्रूर, निर्मम व्यक्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा वरन् जख्म और दर्द मिला। इसलिए कवि ने जीने की आस छोड़ने की बात कही है।

'बस्तर की चांदनी' रचना में कवि ने बस्तर की सुन्दरी को नई पहचान दी है। 'पूनम चन्दा बस्तरी के माथे की बिन्दी... इस सौन्दर्य से अभिभूत हम बस्तर से विलग कैसे हों। बस्तर के प्राकृतिक सौन्दर्य की छटा अद्भुत है।

'इन्द्रावती' कविता में श्री तिवारी जी ने बस्तर के पशु–पक्षी, मानव के लिए इन्द्रावती नदी को वरदान चित्रित किया है। इन्द्रावती नदी की धारा से समस्त खग–विहंग, पशु, प्रकृति और मानव का जीवन सार्थक एवं धन्य हो गया है।

अंत में मैं श्री विमल तिवारी को धन्यवाद, बधाई एवं शुभकामनाएं देता हूं कि वे सदैव पाठकों के लिए इसी प्रकार श्रेष्ठ रचनाएं लिखते रहें।

राजा बाबू तिवारी, से.नि.प्राचार्य, आयुष निवास, श्रीराम टाकिज के सामने, महासमुन्द, छ.ग. मो.–09770952510

सम्पादक महोदय, बहुत अच्छा लगा, लगातार प्रकाशन का कार्य करने के लिए आप बधाई के पात्र हैं। पत्रिका को वैचारिक सहयोग अपने एक स्लोगन के साथ रखना चाहता हूं क्योंकि यह समाज को खोखला करता जा रहा है।

–मौत का सामान, पान, गुटखा शराब, सिगरेट हम खरीद कर खाते हैं समाचार पत्र एवं पत्रिकायें क्यों मुफ्त में चाहते हैं।'

बस्तर पाति द्वारा जनहित में जारी....

उपरोक्त विज्ञापन आप अपनी पत्रिका में प्रकाशित करें ताकि सोशल फील्ड में जो काम कर रहे लोग भी पत्रिका से जुड़ें। इस विज्ञापन का फ्लैक्स भी आप लगवा सकते हैं क्योंकि इस नशे से न केवल निम्न अशिक्षित वर्ग बल्कि पढ़े लिखे बुद्धिजीवियों का एक बड़ा तबका भी गिरफ्त में है। हम बस्तर पाति के मंच से इसकी पहल कर सकते हैं। जन सरोकार के प्रश्नों पर एक सार्थक मंच देना भी हमारा काम होना चाहिए।

शिशिर द्विवेदी 257 रामबाग, बस्ती (उ.प्र.) मो.–09451670475

कहानी की शर्तें

टीवी, मोबाइल और इंटरनेट से घिरी युवा पीढ़ी किस तरह पुस्तकों, अर्थात् शब्दों की दुनिया में वापस लौटे यह चुनौती सबके सामने है। प्रकाशक, संपादक, वितरक और लेखक, विचारक, शायर और कवि सभी इस चुनौती को महसूस कर रहे होंगे। विशेषकर राष्ट्रभाषा हिन्दी के सन्दर्भ में। वैसे तो पठनीयता की समस्या दुनिया की तमाम भाषाओं में महसूस की जा रही है – मगर हिन्दी की स्थिति भला किससे छिपी है। वर्तमान में लगभग सत्तर करोड़ हिन्दी भाषा को लोग बोलते–समझते हैं। लगभग 40 करोड़ लोग साक्षर हैं। लगभग देश में अठारह करोड़ हिन्दी के अख़बार वितरित होते हैं। मगर हिन्दी का वर्तमान लेखक/कवि लिखकर सम्पन्न हुआ है या सिर्फ लिखकर अपनी आजीविका चला पाता है– ऐसा नहीं सुना गया। यहां लेखन से अभिप्राय पत्रकारिता नहीं है– अभिप्राय साहित्यिक लेखन व प्रकाशन से है। इस पर कई पहलूओं से विचार आवश्यक है– पूर्व में भी इन पहलूओं पर लिखे गये हैं। यहां लेखकों के समक्ष उत्पन्न चुनौती कि आज वे क्या लिखें, किस तरह लिखें कि एक आम पाठक, टीवी, इंटरनेट पे बैठा भोंदू किताबों मे आँख गड़ाए। पुस्तक प्रेमी बने। अंग्रेजी में तो वह ठीक–ठाक पढ़ लेता है (विभिन्न वजहों से) मगर–अपनी जुबान में ? यह सही है कि अंग्रेजी पढ़कर वह अधिक सम्मानित, गौरवान्वित और रोजगार उन्मुख हो जाता है– मगर फिर भी, अपनी जुबान में रची रचनाएं दुनिया की कोई भी विदेशी भाषा विकल्प नहीं हो सकती। हम इस पहलू को यहां बार–बार रेखांकित करेंगे। फिलहाल, सवाल है आखिर हिन्दी की क्या ताकत है और क्या हिन्दी लेखक/विचारक इस ओर सतर्क हैं ? प्रश्न का उत्तर आप स्वयं ढूंढ लें।

किसी भी भाषा में गद्य, वह भी गल्प साहित्य सबसे अधिक पढ़ा जाता है। कहानी, लघु कहानी, लम्बी कहानी व उपन्यास, रचनात्मक अ–गल्प साहित्य जैसे सफलता, आध्यात्म, योग, वैकल्पिक–चिकित्सा प्रणाली, ज्योतिष, वास्तु इत्यादि पर लिखी विशेषज्ञों की किताबें भी हर भाषा में खूब बिकती हैं। युवा तो 'सक्सेस' की पीछे पागल है ही। आजकल 'असफल होना जरूरी है– जैसी किताबें भी खूब पढ़ी जा रही हैं। पर, ऐसी पाठकीयता जिज्ञासावश है, ये साहित्य के रसिया नहीं हैं। हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि बदलते दौर से हर चीजें बदलती हैं, हमारे पाठक जो भी हैं, काफी परिवर्तित हो चुके हैं। आज स्पेनिश उपन्यासकार काउलो पेल्हो के गद्य में (उपन्यास) में युवा पीढ़ी मैनेजमेंट के फंडे ढूंढती है – प्रश्न सही और गलत का नहीं है, प्रश्न है युवा पीढ़ी के सम्मान का ! वह फिक्शन पढ़कर भी आजीविका की ओर 'फोकस्ड' है। खासकर ये मध्यवर्गीय युवा पीढ़ी जो हिन्दी पट्टी की रीढ़ हैं– जिनके माता–पिता ने इनकी पढ़ाई और अच्छे रोजगार के लिए पाई–पाई जमा किया। सब–कुछ झोंक दिया है। इनका लक्ष्य ही वो मछली की आंख है – और कुछ नहीं।

हमें इनकी चिंता है। ये साहित्य से दूर हैं। सद्–साहित्य से। क्योंकि ये ही हिन्दी के पाठक हैं।

क्या हिन्दी साहित्य के प्रचुर भंडार में वर्तमान जीवन के उलझे सवालों का जबाब इन्हें मिल पाता हैं ? अपनी भाषा में लिखना और पढ़ना, दोनों ही सहज है। फिर एक सक्रिय पाठक की स्थिति हिन्दी साहित्य में क्यों नहीं दर्ज हो पाती। क्या हिन्दी सिर्फ वे लोग अपनाते हैं जो किसी कारणवश अंग्रेजी पर अधिकार नहीं बना सके। अर्थात् हिन्दी प्रेम महज एक जरूरत भर हैं। इन्हें अपनी भाषा, परम्परा, प्रचुर साहित्य से कोई लेना–देना नहीं, क्योंकि हमें अपनी चीजों से प्रेम है ही नहीं। न ही इनका मूल्य हमें पता है।

वजहें कई हैं। हो सकती हैं। शायद उस मछली के आंख के सिवा उन्हें किसी और चीज से लेना–देना नहीं।

यकीनन भाषा में लेखन अंधकार से घिरा प्रतीत होता है। शायद हां, मगर यही वक्त है जब हमारा एक दीया भी दूर तक रोशनी करे। जी हां! तमाम हिन्दी लेखकों को पुनर्विचार करना चाहिए और युवा पीढ़ी को ध्यान में रखते हुए रचनाएं लिखने, लिखने के तरीके पर विचार करना चाहिए।

सबसे पहले तो लेखक यह विचार करे कि वह उनके लिए कुछ लिख रहा है जो वीडियो गेम्स में मगन रहता है या सक्सेस की किताब के पीछे मगन है। उसे मनोरंजन (शुद्धतावादी साहित्यकार माफ करेंगे) के लिए किताब पढ़ने की जरूरत ही क्या। टीवी में दर्जनों चैनल, मोबाईल और इंटरनेट उसका यह काम पहले ही कर रहे है। अब लेखक क्या करें। उसका क्या दोष।

लेखक के पास एक ऐसी अनंत दुनिया है जिसे ना वीडियो, सिनेमा या चैनल या इंटरनेट पूरा कर सकते है। साहित्य का विकल्प मात्र साहित्य है। चाहे कोई भी युग हो कैसा भी समाज हो। हां, कुछ पहलूओं का गहन विचार अत्यंत जरूरी है। मससन, एजेंडा।

कहानी/गल्प में एजेंडा

जैसा कि इस बहस कॉलम में पहले भी रेखांकित किया जा चुका है कि भारत में कला एवं रचना के हर क्षेत्र में पश्चिम की नकल की जाती रही है। वह भी बिना विचारे। यर्थाथवादी कहानियां प्रेमचंद को समय से अपने यहां लिखी व पढ़ी गयी,

मगर महान रचनाकारों ने अपनी जमीन नहीं छोड़ी। पर अधिकांश रचनाकारों और संपादकों ने 'क्रांतिकारी' होने के चक्कर में यूरोप और अमेरीका का भोगा हुआ यथार्थ हमारे यहां फिट करने लगे। हमारी संस्कृति विरासत, परम्पराएं, मिथक और लोक संस्कृति पश्चिम का विकल्प कैसे बन सकती है। वही बात उतनी ही सही है– पश्चिम का भोगा यथार्थ हमारा यथार्थ कैसे बन सकता है ? हमारी जलवायु, हमारी मिट्टी हमारे शब्द, हमारी भाषाई ताकत सिर्फ हमारे लिए है। अतः विशुद्ध साहित्यक आनंद या रस की प्राप्ति तो सिर्फ और सिर्फ अपनी ही भाषा में ली या दी जा सकती है। हम किसी स्त्री को द्रोपती या सीता या मंथरा कहकर सम्बोधित करते हैं तो इसका सीधा अर्थ पाठक समझता है। उसी तरह रावण या विभीषण या भीष्म कहकर किसी को सम्बोधित करने का अर्थ स्पष्ट है। ऐसे ही हजारों शब्द साहित्य, भाषा में सहजता से आते है और उन्हें परिभाषित करने की जरूरत नहीं पड़ती। मगर जब आप पश्चिम के लिए लिख रहे होते हैं तो स्वभाविक है आपको इस मिथकीय शब्दावली को परिभाषित करना ही एक टेढ़ी खीर होगी। सुरसा का मुंह और बजरंगबली की छलांग का अनुवाद क्या होगा ? ऐसे ही प्रतीक और चिन्ह पश्चिमवालों के हैं जिन्हें क्या हम समझ पाते हैं....?

इन सारी बातों का सन्दर्भ प्रमाणित करता है कि हमारा सन्दर्भ जितना हमारे लिए सहज और ग्राह्य है पश्चिम के लिए उतनी ही दुरूह और अग्राहय। पर अफसोस आज भी चंद भारतीय लेखक पश्चिमी एजेंडा की माला जप रहे हैं और हमें शानदार आलोचकीय टिप्पणी के साथ परोस रहे हैं–जबकि सच ये है कि इनकी साहित्यिक जमीन ही खिसकी है–वे 'खिसके' हैं उन्हें स्वयं नहीं पता। भला हिन्दी के आम पाठकों को कहां तक दोष देंगे!

इस तरह हमारे यहां वहां की देखा–देखी विभिन्न एजेण्डाबद्ध लेखन प्रारंभ किया गया मसलन स्त्री लेखन, (जहां स्त्री की स्वतंत्रता अहम है–जो सिर्फ यह आजादी कपडे की लम्बाई–चौडाई तक ही सीमित रही।) दलित लेखन (सिर्फ दलित ही दलित लेखन कर सकते हैं–जी हां भोगा हुआ यथार्थ की तर्ज पर।) उसी तरह सोवियत साहित्य की बाढ़ में लेखन में सद्देश्यता अथवा सार्थकता काफी पूर्व प्रचलन में आ चुकी है। इन सारी बातों पर विस्तार में जाने से बेहतर है कि हम इनके प्रतिकूल पक्ष पर विचार करें। इसका सबसे बुरा प्रभाव ये पड़ा कि ये तमाम आंदोलन एक फैशन बन गये। साहित्य या सृजन से ये बहुत दूर चले गये। साम्यवादी सोद्देश्य रचनाएं राजनीतिक पोस्टर भर बन कर रह गयीं। और स्त्री की आजादी दिल्ली के किसी संपादक के निजी कक्ष तक सीमित! इन महत्वपूर्ण पदों पर बैठे समाज को आईना दिखाने का दावा करने वाले महान बुद्धिजीवियों ने गजब का गैरजवाबदार, मूर्ख और अहंकारग्रस्त प्रकृति का प्रसार किया। इनके होल–विल ने देश के युवा लेखकों–लेखिकाओं में एक विभ्रम पैदा किया– यही साहित्य है। जिसमें एक स्त्री घर से बाहर निकलती है तो चौराहे पे घूरी जाती है, बस पे संवार होती है तो अनचाहे स्पर्श का शिकार होती है– ऑफिस में बॉस और सहकर्मियों की भद्दी निगाहों से घिरी होती है। घर आती है तो पिता या पति शराबी निकलता है। वे भी भद्दी टिप्पणियां करते हैं। दूसरे दिन वह स्त्री फिर से तैयार हो ऑफिस के लिए निकलती है क्योंकि उसकी बच्ची के भविष्य का सवाल है–कौन है उसके अलावा इस संसार में।

इस तरह एक दर्द भरे रिश्तों/स्थितियों/घटनाओं से ओत–प्रोत एक कहानी बनती है। स्त्री या तो चुपचाप सहन करती है या ज्यादा से ज्यादा एक दिन अपनी बच्ची को लेकर 'घर' से निकल जाती है। और इस तरह स्त्री 'क्रांति' घटित हो जाती है।

ऐसे एजेण्डाबद्ध लेखन से वर्तमान हिन्दी की कहानियों का ढेर मिल जाएगा। वास्तव में हम जिसे पल्प फिक्सन कहते है वह यही है। लुगती साहित्य! इसमें 'सोद्देश्य' या 'क्रांतिकारी सोच' को जबरदस्ती ठूंसा जाता है। प्राचीन या सामंतवादी मूल्यों (अवमूल्यों ?) के खिलाफ एक बेजान सा विद्रोह। एक ऐसा विद्रोह जिसका स्वंय की ही सांस उखड़ी हो!

किसी भी संपादक या आलोचक ने यह विचार नहीं किया कि एक कहानी मुकम्मल होने के लिए कुछ शर्तें भी होती हैं। क्या वे कहानियां उन शर्तों पर खरी उतर पा रहीं हैं ? फिर पाठकों ने ऐसी कहानियां खारीज़ की है क्या गलत ?

फिलहाल तमाम एजेण्डा लेखकों ने अपना सांचा तैयार रखा। जैसे थानेदार है तो वह बेईमान होगा ही, ऑफिस का बॉस क्रूर, नेता लम्पट, कॉरपोरेट लालची और आम आदमी सीधा, सच्चा, ईमानदार! व्यवस्था और सक्षम लोगों द्वारा शोषित!

इस एक रैखीय यथार्थ से जिन्हें लेखक भोगा हुआ यथार्थ समझकर लिखता है उससे इनकार नहीं है– एजेंडा से इनकार नहीं है– इनकार है कहानी के साथ हो रहे व्याभिचार से। जी हां, हमने सोद्देश्य या एजेण्डा या विमर्श के नाम पर एंटी–कला अथवा कलाविरोधी बातों को जान बूझकर बढावा दिया–क्योंकि यह हमारी जरूरत कम, प्रचलित फैशन ज्यादा थी।

क्या ऐसे ट्रीटमेंट हिन्दी साहित्य या हिन्दी के लेखकों, पाठकों के साथ अन्याय नहीं थे ? हैं ?

क्या एजेंडा या मूल समस्या हमारे साहित्य से गायब हो जाए? नहीं! सिर्फ वह ढांचा गायब हो और रचनाएं अपनी शर्तों कला–तत्वों पे खरी उतरे। अब तक जो हुआ सो हुआ मगर आज यदि आप पाठक चाहते हैं तो झंडा दिखाने से काम नहीं चलनेवाला। आपकी रचना मे जीवन का स्पर्श हो, वे सच्चे हों और हां, कला विरोधी नहीं। हिन्दी के तमाम विद्वान आलोचकों, संपादकों को समझना चाहिए कि दुनिया में आज तक कोई भी महान रचना साहित्य फिल्म, संगीत, किसी भी क्षेत्र की बात हो–इसलिए महान हुई कि उनमें कला के पूरे तत्व अपने संतुलन में स्थित थे। आगे भी अच्छी रचनाओं की यही एक मात्र शर्त है– समस्त पहलूओं–तत्वों का बेहतरीन संतुलन! जी हां, तमाम विरोधी और परस्पर चीजों का संतुलन ही बेहतरीन कला है।

बात यहां साहित्य की हो रही है, विशेषकर गद्य लेखन में कहानी की। हम कहानी के 'कहानी' होने की कुछ शर्तें अनिवार्य मानते है– इसकी चर्चा आपसे बेहतर होगी।

कहानी में परिवेश–

कहानी में सघन परिवेश का वर्णन, चित्रण कहानी में जान फूंकता है। आखिर कहानी पात्रों के मार्फत घटित होती है, पात्र घटनाओं के घात–प्रतिघात से गति पाते हैं मगर ये सारी चीजें किसी निश्चित परिवेश या वातावरण में घटित होती हैं। घटनाएं या चरित्र आसमान में हो तो आसमान का चित्रण तो होगा ही। कहानी या कला की स्थानिकता है– स्पेश। इसमें विभिन्न रंगो से कहानी में जान आती है। किसी आम पाठक से पूछिए कि उसने प्रेमचंद की पूस की रात पढ़ी है– वह कहता है– कौन सी कहानी? वही जिसमें खूब ठंड लगती है– अलाव जलाता है.... और कुत्ते के साथ उछल कूद करता है। वह कभी इस तरह नहीं अभिव्यक्त करेगा– वो कहानी जिसमें एक किसान मजदूर बनकर भी भूखा है– भारतीय किसानों की दयनीय होती कहानी– एक मील का पत्थर! जी! ऐसी व्याख्या एक हिन्दी का प्रोफेसर देगा आम पाठक नहीं। उसी तरह गुलेरी जी की 'उसने कहा था' के बारे में पाठक इस तरह अपनी भाषा में कहते है– वह कहानी जिसमें लहना सिंह लाम पे जाता है। और जिसमें कुडमाई होती है।

जरा गौर करें कि ईदगाह कहानी में लेखक बुढ़िया के एंगल से कहानी प्रारंभ करके खत्म कर देते– मसलन बुढ़िया तीन पैसे देकर हामिद को रवाना करती है और प्रतीक्षा में बैठी है। दोपहर तक सभी बच्चे झूमते–खेलते विभिन्न खिलौनों के साथ वापिस आते हैं। उसका हामिद कहीं नहीं दिख रहा है– तीन पैसे में क्या खाया होगा या कौन सा खिलौना खरीदा होगा। अंततः हामिद उसके सामने प्रकट होकर चिमटा थमाता है और वही संवाद दोहराता है– उसके हाथ जल जाते हैं इसलिए यह चिमटा...।

कहानी का दृश्य तो इस एंगल से भी पूर्ण हो जाता पर क्या कहानी उतनी ही सशक्त बन पाती, बालमन का सम्पूर्ण और सशक्त चित्रण जो हुआ है क्या वह संभव हो पाता ? प्रेमचंद तो ईदगाह के बहाने जिस खूबसूरती से शहर की सैर कराते हैं– मेले का दृश्य दिखाते हैं– बालमन की कैफियत से हमे परिचित कराते हैं– वह सब हमारे समक्ष उनके 'एजेण्डे' को तीव्र शानदार और मुकम्मल ही बनाती है। 'पूस की रात' में तीव्र ठंड से जूझता हलकू, यहां तक कि उसे भान होता है कि नीलगायें खेत चर रही हैं–मगर आलस्य और ठंड के साम्राज्य के कारण हलकू से हिला भी नहीं जाता। यह ठंड की दास्तान से ज्यादा गरीब फटेहाल किसान की दयनीय दशा का चित्रण है कि अब खेत नष्ट हो जाने के बाद लगान कैसे पटाएगा। मगर वह प्रसन्न है–मजदूरी करेगा मगर ऐसी ठंड में अब उसे रखवाली नहीं करनी पड़ेगी।

उपरोक्त यह सभी सशक्त कहानियां दरअसल सोद्देश्य होने के साथ–साथ सशक्त वातावरण के कारण कालजयी हुई हैं। हमारे कहानीकार एजेण्डाबद्ध तो हैं–मगर उनकी रचनाओं से वातावरण का एक सामान्य चित्रण भी गायब है। सच तो ये है कि परिवेश का चित्रण ही एक पात्र की तरह होना चाहिए। हमारे मूल पात्र की भावनाओं, सोच का वाहक इन परिस्थितियों को होना चाहिए। हमने जो हामिद की आंखो से ईदगाह की सैर की है या हलकू के इस रांड पछिया हवा को झेला है या टांगेवाले द्वारा संकरे मार्ग में चलने का चिरपरिचित दृश्य देखा है, (उसने यहा था) वह सब कहानी के कथ्य के साथ–साथ कहानी में सजीव वातावरण के वर्णन के कारण संभव हो सका है।

अफसोस कि आज की कहानियों में–जैसा ऊपर कहा गया है पात्र अपने समापन की ओर तेजी से दौड़ लगाते दिखते हैं। दो–एक लाइन का चित्रण भी लेखक नहीं करना चाहता। एक कमरे से दूसरे कमरे में कहानी का दृश्य चला गया मगर लेखक की नजर इस परिवर्तन को जरा भी रेखांकित नहीं करती। वह एक तरह से आत्मालाप (चरित्रालाप) की स्थिति में है। उसकी दशा ऐसी ही है मानों उसका चरित्र रो रहा है तो वह खुद रोने लगा है। उसका चरित्र गम में है तो लेखक खुद वहां गम खाए बैठा है। सोद्देश्य रचनाएं गढ़ने / बनाने के चक्कर में कहानी कला भी कोई चीज है– यह हम भूल ही बैठे। लेखक

अपने पात्र के साथ रोए, गम खाए कि तटस्थ होकर वातावरण पर भी दृष्टि डाले....?

बहुत से कहानीकार वातावरण का इस तरह चित्रण करते है– वह शाम उदास थी। वह रात भयंकर थी। वह सबेरा रूला देने वाला प्रतीत होता है। बाहर की गर्मी ने उसके सारे तेज को मानो सोख लिया है।

अर्थात अपने मुख्य पात्र में खूब सारे विशेषणों का आलम्बन! शाम उदास नहीं होती या रात भयंकर नहीं होती–यह तो पात्र की मनोदशा का वर्णन है।

इसमें कुछ गलत नहीं है मगर दृश्य का चित्रण यहा गौण है अथवा होता ही नहीं–यहां तो पात्र की मनःस्थिति का चित्रण है, एक अलंकार की तरह! जबकि कहानियों में प्रतीकात्मक अलंकारों की जगह सीधा वास्तविक वर्णन अधिक प्रभावोत्पादक होता है। पाठक के मन में यह जिज्ञासा रही ही नहीं कि पात्र के बारे में जाने–लेखक ने खुद बता दिया रात भयंकर (डरावनी –पात्र डरा हुआ था) थी या सबेरा उदास। दूसरी हानि यहां जो एक सजीव वातावरण था जिसका चित्रण हो सकता था लेखक वह मौका गंवा रहा है। उसे तो वातावरण का दृश्य रचना ही नहीं था मुश्किल यही है। लेखक तो सीधा–सीधा अपने पाठकों को बताकर एजेंडा पूरा करने को व्याकुल है। सौ मीटर की दौड़ का झंडा गाड़ना!

वह उदास है–जरा इस चित्रण पर गौर करें–

आज का सबेरा भी रोज की तरह था, पूरब का क्षितिज लाल और शाखों पे पक्षी चहचहाते। गली में गायें रंभा रही थी और कुत्ते कूँ–कूँ करते हुए दुम हिला रहे थे। वह आदतन झरोखे तक गया पर जाने क्यों वापस अपनी कुरसी पर जा धंसा। उसके कंधे झुके थे, गाल पर हाथ रख वह दीवार के कोने ताकने लगा, वहां मकड़े ने जाल फैला रखा था।

उक्त दृश्य में पात्र की मनः स्थिति का वर्णन है। पात्र की मनःस्थिति उदास या कुछ ऐसा है जो ठीक नहीं है–वह आदतन झरोखे तक जाता है मगर आज अपनी कुरसी पर जा धंसा। और मकड़े का जाला देख रहा है– जबकि बाहर का दृश्य सुन्दर है हमेशा की तरह कुत्ते, पक्षी प्रसन्न हैं मगर इस प्रसन्नता से उसे कोई लेना–देना नहीं।

यह दो चित्र अलग–अलग रंगों के हैं जो पात्र की उदासी या खिन्नता को गाढ़ी लकीर से रेखांकित करते हैं।

यह चित्रण अधिक कला सम्पन्न क्यों है–

एक– इसमें दो विरोधी रंग के द्वारा मनःस्थिति/परिस्थिति का चित्रण है, दो– लेखक अपनी ओर से पात्र के बारे में कुछ नहीं कहता, दृश्य और स्थितियां ही सबकुछ बता देती हैं, तीन– पाठक के मस्तिष्क का भरपूर दोहन लेखक कर रहा है अर्थात पाठक में जिज्ञासा उत्पन्न करता है–उसे सोचने पर मजबूर करता है कि पात्र ऐसा आज क्यों हरकत कर रहा है और अंत में कि मात्र यह लिखने के कि आज वह उदास या खिन्न था, कुरसी पर मुंह लटकाकर बैठा था लेखक पाठक को समूचे परिदृश्य में घुमाता है बल्कि दौड़ाता है। पश्चिम की लाली पक्षियों का कलरव गली के कुत्ते व गायें..... और तब कमरे का वह दृश्य जहां पात्र को झोल नजर आता है। (इस झोल में आप उसकी मनःस्थिति देख सकते हैं।)

आप खुद सोचिए–उदासी या खिन्नता का दृश्य इस तरह रचा जा सकता है ? और इससे इतने फायदे?

हर अच्छी कला सब कुछ नहीं बताती बल्कि सब कुछ कहकर मूल बात छिपाती हैं। याद रहे बस्तर पाति सोद्देश्य है मगर कला विरोधी नहीं। हम कला साधक हैं। कला, कला के लिए, कला और अभिजात्य, कला और आवाम, कला की उपयोगिता नामक बहस अब इतिहास की वस्तु बन गयी है।

और सीधी बात–हर पात्र के साथ 'स्थान' मौजूद है– तो उस स्थान/ वातावरण को रेखांकित करने से हम क्यों चूकें। असल में लोक या कला में स्थान विशेषकर सजीव चित्रण पाठकों को अपनी दुनिया से उठाकर उस दुनिया में ला पटकता है जहां घटनाएं घटित हो रही हैं। जेठ की दोपहरिया को 'पूस की रात' पढ़ते हुए आपकों ठंड सी लगती है तो यह तो कलम का जादू है।

स्थान में समय–

हर स्थान में समय निहित है। समय का महत्व कला की पूरी दुनिया में स्वीकार किया गया है। एक निश्चित स्थान या परिवेश का समय कैसा है ? इसे कौन जी या भोग रहा है ? कौन दृष्टा है या कौन भोक्ता। हम इसे पृथक नहीं कर सकते। भारतीय दर्शन में महाकाल की अवधारणा है– महाकाल, काल की सवारी कर तांडव करते हैं। सृजन के लिए विध्वंस! अर्थात् प्रत्येक समय नामक इकाई की आत्मा है–इस पर सवारी नटराज करते हैं। इसका यह भी आशय है कि काल अपने आप में कुछ नहीं हैं– क्योंकि यह आत्मशक्ति है जो हर चीज नियंत्रित करती है। बात कुछ दार्शनिकता लिए हुए है मगर कला–साहित्य और दर्शन एक ही लक्ष्य तो पाना चाहते हैं– सत्य! सत्य की परिभाषा! सत्य का दर्शन।

दर्शनशास्त्र इस अखिल विश्व की, जीवन की शुष्क और कठोर व्याख्या करता है वहीं कलाएं/साहित्य जीवन के भावों

को पकड़कर सत्य दर्शन करती हैं। यह अपनी जमीन से जुड़ी चीजे हैं– मगर उस जमीन का मूल क्या है ? हम जमीन या आधार की बात तो खूब करते हैं। मेरे ख्याल से मानवीय भाव ही वो जमीन है– जिस पर टिककर साहित्य या कला रचना संभव हो पाती है। इसे आज संवेदना भी कहते है। मानवीय स्पर्श, भावों का स्पर्श इत्यादि। इसीलिए साहित्य एक आनंद/रस का विषय है। आप रोटी यों ही खाकर पेट नहीं भरते। खेत में उगने के बाद गेहूं छांटना, सूखाना, पीसना, आटा गूंथना फिर पकाना। और रोटी भी अभी पूर्ण रसयुक्त नहीं बनी है– अन्य रसों की जरूरत पड़ती है। और ये समस्त रस ही साहित्य/कला के क्षेत्र हैं। भोक्ता द्वारा भोगा गया आनंद, सुख–दुख ही साहित्य का कच्चा माल है और अर्थात् यथार्थ है, सत्य है– जिसकी तलाश सारी–दुनिया के कवि, लेखक व विचारक भिन्न–भिन्न तरीके से आज तक करते आएं हैं।

अपने आप से पूछे कि क्या उस रचना को साहित्य का दर्जा देना सही होगा जो मानवीय प्रश्न या समस्या तो उठाते हैं मगर मानवीय भावों को स्पर्श करने से चूक जाते हैं। आज आपके जेहन में कितनी कहानियां, कविताएं, याद आ रही हैं जिसने आपके भावों को स्पर्श किया ?

यहां एक प्रश्न उठता है कि क्या किसी को सुख–दुख या आनंद का वर्णन या चित्रण कर अखिल विश्व का सत्य पकड़ा जा सकता है ? वह सत्य या यथार्थ का अंश कैसे हो सकता हैं ?

उत्तर है – गुड़ के साथ मुंह में घुल रहा रोटी का टुकड़ा क्या उस बेबस किसान की आशाएं, आकांक्षाएं, उसकी मेहनत, उसके भाग्य की दास्तान का रहस्य अपने में नहीं छिपाए है ? असल है सत्य की डोर थामना, सिरा चाहे जिस ओर का हो।

हमारा विषय था समय और स्थान का परस्पर आपस में गूंथा होना। आप एक अच्छे पाठक हैं तो किसी कालजयी रचना में इन तत्वों को ढूंढिए। आप एक रचनाकार हैं तो समय व स्थान (पात्र या घटना के संदर्भ में) उन्हें उचित स्थान दें। ऊपर के उदाहरण में पात्र की मन की बातें (उदासी) के साथ–साथ स्थान का चित्रण भी है और समय भी अनिवार्यतः मौजूद है। भौतिक रूप से और अभौतिक रूप से भी। पात्र की उदासी का गवाह समय व स्थान दोनों बनते हैं। जरा गौर करें – वह उदास था। या शाम उदास थी।– ऐसा लिखने पर क्या समय और स्थान का वो चित्रण संभव है जो हम बताने का प्रयास कर रहे थे ? आप स्वयं विचार कर लें।

इस समय या स्थान की कई प्रकार की उपस्थिति संभव है – कहानी में, कविताओं इत्यादि में। भौतिक तौर पर तो स्पष्ट है कि यह बारह बजे का दिन अथवा रात है। सर्दी या गर्मी है। पर एक 'घड़ी' पात्र मन या शरीर में भी संचालित है–उसका बारह या तेरह बजे से कोई लेना–देना नहीं है। वह घड़ी उसके भोग की गवाह है। आनंद, सुख–दुख, व्यथा, द्वंद, अंतर्द्वंद, अंतःकलह....उसके व्यक्तित्व के विखंडन या संगठन इत्यादि जैसी स्थिति है। इस घड़ी का चित्रण निश्चित रूप से रचनाकारों के लिए चुनौती है। ये जमीन बड़ी उर्वर होती है–घटनाएं और परिस्थितियां बाहर घटित होती हैं मगर पात्र के भीतर उसकी प्रतिक्रिया ? जैसे उबलते पानी में आलू, साग या अंडा डाला, सबकी उस गरम पानी के प्रति अलग–अलग प्रतिक्रिया। और यही पृथकता रचनाकार की रचना को सबसे पृथक करती है।

समय एक निश्चित कार्य–करण सिद्धांत को जन्म देता है। एक घटना के पीछे की योजना क्या थी ? कारण से कार्य को जानना या कार्य से कारण तक पहुंचना। कहानियों या उपन्यास में आपको अपने पाठकों को जस्टीफाई करना होता है। जैसे 'पूस की रात' में लेखक ने एक किसान (किसानों को सम्मान से देखा जाता था) को मजदूर (अपेक्षाकृत निम्न श्रेणी) होते और मजदूर होकर भी उसे प्रसन्न होते दिखाया गया है। इस विडंबना, एंटी क्लाइमेक्स या क्लाइमेक्स जो कहें–तक पंहुचने से पूर्व लेखक उस कारण और परिणाम को दिखा चुका है–पाठक को जरा भी संशय नहीं होता और अंत में सिर्फ संवेदना या मर्म पर प्रहार ही बाकी रहता है। उसी तरह कार्य–कारण का सटीक विश्लेषण दुनिया की तमाम अच्छी कहानियों में देखा जा सकता है। हर कार्य–कारण अपने समय से जुड़ा है, हर 'समय' अपने 'स्थान' से, और इन सबों की आत्मा (अथवा परमात्मा) है आपका पात्र! उसका अंतःकरण बाह्य घटनाओं और समय के प्रति किस तरह प्रतिक्रिया करता है ? सवाल यही है।

जिस एजेण्डाबद्ध लेखन की हम आलोचना कर रहे थे– उसका असली कारण यह है। इन कमियों को कारण गल्प एक–बेजान सी चीज है। मुर्दा। आप चारों ओर ऐसी मुर्दा कहानियों से घिरे हैं कहने की आवश्यकता नहीं!

कहानी में भाषा/बोली

भाषा या बोली–मिश्रित–भाषा के बल पर रचनाकार कहानी पूर्ण करता है। कई नवोदित रचनाकार यह भ्रम पाल लेते हैं कि गल्प या साहित्य लेखन के लिए भाषाविद् होना जरूरी है। जबकि सत्य कुछ और है, अनुभव यह बताता है कि भाषा की शुद्धता पर जोर या किसी भी तरह से भाषा पर जोर–साहित्य, खासकर कहानी का कबाड़ा करता है। कोई बात अनगढ़ तरीके

से मगर ईमानदारी से कही जाए तो साहित्य में बात बन जाती है। उस कच्चेपन में सच्चाई होती है। एक कुटीर उद्योगवाला सौंन्दर्य होता है जबकि परिनिष्ठित भाषा में, भाषा पर–पूर्ण नियंत्रण वाली रचना से प्रतीत होता है फैक्टरी से निकला उत्पाद है। कहने का तात्पर्य यह नहीं कि भाषा पर आपका नियंत्रण न हो, पर–आप भाषाविद् होकर एक अच्छी कहानी लिख लेंगे, यह शर्त कतई जरूरी नहीं। मेरे ख्याल से परिनिष्ठित भाषा कहानी को जरूरत से ज्यादा कृत्रिम बनाती है।

फिलहाल, भाषा या बोली मिश्रित भाषा के उपयोग से कालबोध के साथ–साथ स्थानबोध अनिवार्य रूप से होता है। जैसे दरबान कहता है– 'जहांपनाह! हुक्म हो तो गुलाम कुछ अर्ज करे।' – स्पष्ट है यह मुगलिया कालखण्ड की ओर संकेत कर रहा है। अब सलीम जहांपनाह से ऐसा संवाद बोलता है– हे डयूड्! आप कैसे हो।'– गौर करें – आप कहीं मजाक तो नहीं कर रहे हैं। कॉमेडी तो नहीं रच रहे हैं। मित्र ने दरवाजे पर खड़े होकर आवाज लगाई – 'अरे डपोरशंख! जिंदा है कि मर गया, निकल बाहर.....! '

कहने की आवश्यकता नहीं कि दृश्यों के ठेंठ वर्णन या चित्रण में अथवा पात्रों के मुंह से कहलवाए गये संवाद कहानी को सीधे–सीधे जमीन से जोड़ते हैं। एक ऐसी गंध और स्वाद इसी बोली भाषा के दम पर उत्पन्न होता है कि हमें कहना पड़ता है – वाह! चरित्रों को तो आसमान से उतार दिया गया है। लगता है हम पात्रों और उनके परिवेश में जी रहे थे।

कहानी इसी तरह विशिष्ट बनती है। और लेखक को इसमें खूब मेहनत करने की जरूरत नहीं है – वह किसी ना किसी बोली–परिवेश का सघन अनुभव लिये होता है– उसे अपनी ताकत का भरपूर दोहन रचनाओं में करना चाहिए।

जब बात भाषा या बोली की हो रही है तो एक बात स्पष्ट कर दूं कि अकसर हम कहानी में अच्छी गद्य रचना, सजीव वर्णन को भाषा की समझ और भाषा–ज्ञान से जोड़ते हैं। जबकि सच भिन्न है– यह ऐसा लगता है, मगर बहुत बड़ा फर्क है। असल में हम जिस बात की तारीफ या जिस सुन्दर गद्य के कायल होते हैं वह दृश्यों के सजीव चित्रण, मनः स्थिति के स्पष्ट उल्लेख से सम्बंधित होते हैं – साथ ही रचनाकार कहानी के सभी पैरे–सभी परिवर्तित होते 'सेटिंग' के प्रति बहुत सतर्क रहता है। जैसे एक कमरे से पात्र दूसरे कमरे में या बाहर कहीं जाता है तो उसी अनुसार उसकी जुबान (लेखनी) भी चलती है। वह सारे छोटे–बड़े दृश्यों, स्थितियों को पकड़ते चलता है। इसके लिए रचनाकार भाषा का गुलाम नहीं बनता, बल्कि भाषा को अपना गुलाम बनाता है। कबीर को भाषा का डिक्टेटर भी कहा जाता है– वे जहां भी जाते थे, स्थानीय बोली का खूब प्रयोग करते थे। भाषा–बोली उनकी चेरी थी। प्रेमचंद ने अपने गद्य में शास्त्रीय व लोक शब्दों का सुन्दर मिश्रण किया हैं सशक्त गद्य में क्रिया का सशक्त प्रयोग होता है। दृश्यों में गति मौजूद रहती है। कहने का अर्थ ये कि रचनात्मक वर्णन रचनात्मक दृष्टिसम्पन्न होने से आती हैं– केवल भाषा ज्ञान उसकी शर्त नहीं है। हॉ, आम बोल–चाल की भाषा में हम जरूर कहते हैं– कहानी/साहित्य लिखने के लिए शुद्ध भाषा चाहिए। भाषा ज्ञान पूर्ण चाहिए, इत्यादि।

बहुत सारे लेखकों को पढ़ते प्रतीत होता है कि लेखक दांत और जबड़ा भींचकर कहानी लिख रहा है। किसी गुफा में जा बैठा है और लिखे जा रहा है। वहां शब्दों और वाक्यों का ऐसा–ऐसा जाल बुनता है कि हिन्दी का साधारण पाठक तो उस भूल–भलैये में ही गुम हो जाए। शानदार रचनाएं तो सहज भाव से आती हैं। भाषा दो और दो चार नहीं होती। कुछ रचनाकारों को भाषा ज्ञान इतनी सख्ती से जकड़े रहता है कि वे बेचारे बंधनमुक्त हो ही नहीं पाते।

और इस भाषा प्रवाह को क्या कहेंगे – प्यार का दुपट्टा लहरा गया...., इश्क के नशे की भांग खा कुंए में जा गिरा..., ईश्क का कद्दू कलेजे में छिल गया...., गम की कॉफी वह पी गया....., बेवफाई प्यार की छिपकली मेरे सीने की दीवार पर जा चिपकी....., भ्रष्टाचार रूपी चमगादड़ चारो ओर उल्टा टंगें थे और बेचारे दीनू की उम्मीदों का पजामा चिथड़ा–चिथड़ा हो रहा था.....!

वैसे, हास्य रस पैदा करना हो तो ख्याल बुरा नहीं है। ''हाय गाईज! मुझे मुआफ करना आज खुशी के मारे रह नहीं पाया क्योंकि हमारे सलीम जंग फतह कर तसरीफ़ ला रहे हैं। अबे चिकने! देख क्या रहा है – फूल–माला कौन लायेगा....., बीरबल! अनार के जूस का प्रबंध क्या मैं करूं...?''

सच तो ये है कि आज ऐसा लेखन हो कि उसका विकल्प सिर्फ वही हो, न टीवी का फिल्म न इंटरनेट। आप चाहे तो एक सुझाव पे खूब गौर फरमाएं – स्थानीय बोली का अपनी भाषा में सुन्दर मेल! ताकि पाठक कहे–पढने का मजा ही अलग होता है। और यह आपके भाषाविद बनकर नहीं, भाषा और विभिन्न प्रचलित बोलियों की अच्छी समझ और अच्छे मिश्रण से संभव है। जब आप कहानी के लिये पात्र उठाएं–विचारे कि वह कैसी भाषा/बोली का इस्तेमाल करेगा। बस्तर पाति लोक रंगो में रंगे चित्रों का स्वागत करती है। इसी अंदाज के साथ–साथ आपके पास कथ्य हो (सोद्देश्य) और कहानी का मूल तत्व–आगे क्या...., तो निश्चित है आप एक सफल साहित्यिक थ्रीलर लिख रहे है।

अंत में एक स्पष्टीकरण देना चाहूंगा। यहां लेखन में 'मनोरंजन' शब्द का उल्लेख किया गया है। इससे तात्पर्य यह लगया जाए कि एक नौ वर्षीय बालक के लिए मनोरंजन का अर्थ अलग होगा, सोलह वर्षीय युवा सेक्स विषयों से रोमांचित होगा, वहीं संभव है बूढ़े आध्यात्म और पुनर्जन्म विषयक साहित्य में डूबें। इस शब्द का अर्थ फूहड़ता से नहीं है– हास्य भी आप देना चाहें तो वो शालीन ही अच्छा लगेगा।

अब इस मनोरंजन से आपका मनोरंजन करना बंद करने की इजाजत दें– मनोरंजन से हमारा तात्पर्य रचना की पठनीयता से है। और हां, अतंतः एक रचनाकार ही सही–सही जानता है उसे अपनी अभिव्यक्ति किस तरह करनी है। अंतिम स्रष्टा वही है–हमने तो ऊपर सिर्फ डेमो दिखाया है। पूरा जीवन तो आपके हाथ में है।

(कहानी और उसके तत्वों पर बहस अगले अंक में जारी –संपादक) ***बस्तर पाति फीचर्स***

पाठकों के लिए बस्तर पाति का ख़त

प्यारे मित्रों को मेरा नमस्ते।

आप कैसे है। उम्मीद है सानंद और स्वस्थ्य होंगे। यहां सभी ठीक हैं। बस आपकी याद आई इसलिए खत लिखने बैठ गया। असल में मुझे कुछ याद आ रहा है, इसलिए आपको कहे बिना रह नहीं पाया। मैं आपको सब कुछ बताता हूं। पहले आप मेरे बचपन के दोस्त से मिलो, ये हैं श्रीमान् खखनू। हमारे स्कूल के दिनों के सहपाठी। हमलोग इन्हे दही कहकर पुकारते थे क्योंकि श्रीमानजी को दही खूब पसंद था। तो मिस्टर दही दसवीं क्लास तक खाखी नेकर पहने और कमीज का बटन मजाल जो गले तक न लगा हो। आज ये मुम्बई में एक कॉरपोरेट के संयुक्त निदेशक हैं। मगर बात ये नहीं जो मैं बताना चाह रहा हूं, बात कुछ और है। बात इनके गांव की है। गांव में सिर्फ एक मास्टर जी थे जो पढ़े लिखे थे। कई घरों से नौजवान नौकरी करने परदेश(?) जा चुके थे। वहां से चिठ्ठी आती थी तो घर में कोई पढ़ा–लिखा नहीं कि खत बांचे। बस मास्टर जी का दरवाजा सबको तब दिखता था। मास्टर जी अपनी अहमियत खूब समझते थे। लोग उनके पांव छूते, उनके आसन के नीचे बैठकर घंटों मान मनोव्वल करते। क्या भाव खाते मास्टर जी! बड़ी मान मनोव्वल के बाद मास्टरजी तैयार होते–वहां आसन बिछा कर ठंडा पानी, पान–सुपारी और शरबत गुड़–लेकर घर के लोग प्रतीक्षा करते–खत में किसके लिये क्या बात लिखी गई है।

आसन जमाकर जब मास्टर जी खत हाथ में लेते तो घर के छोटे–बड़े सबों के चेहरे पे रोमांच, रहस्य का भाव पैदा हो जाता। वे एक–एक शब्द अपने कान में जमा लेना चाहते।

मास्टर जी इस भाव से, इस अदा से चिठ्ठी बांचते कि प्रस्तुत श्रोतागण विभोर हो जाते। खत लिखने वालें के समस्त भावों को सामने प्रस्तुत कर देते। चिठ्ठी बांचने के बाद चिठ्ठी का जवाब भी उन्हीं को देना होता। मगर इतनी आसानी से नहीं। दो दिन, तीन दिन, सप्ताह भर तक उनको तेल लगाना पड़ता, अच्छे–अच्छे पकवान खिलाने पड़ते तब जाकर एक दिन मुहरत निकलता–चिठ्ठी लिखने का, घरवालों की तरफ से। उस दिन भी घरवाले अपने–अपने भाव व्यक्त करते! बेटे के बाप से पूछा जाता क्या लिखूं, बाप कहते लिख दीजिए आशीष। और क्या कहूं–जहां रहे खुश रहे। मां भी वैसा ही कुछ आशीष–बाशीष प्रेषित करती।

अंत में मास्टरजी घर की बहु की ओर इशारा करते–उसकी तरफ से कुछ लिख दें ? बहु घूंघट में कैद खिड़की से झांकती। शरमाकर ओझल हो जाती। क्या मजाल कि पत्नी अपने पति के लिए कोई संदेश भेजे!

दोस्तों! मैं यही बताना चाह रहा हूं कि कहां वो दिन और कहां यह आज का समय!(संभवतः आज भी यह अशिक्षा गांवों में मौजूद हो) आपका ईमेल, कमेंट्स, लाइक्स इत्यादि के ढेर लगे रहते हैं। मगर ख़त हमारे दिल के करीब हैं–ये जितने निजी हो सकते हैं उतने सार्वजनिक भी। और एक बात आप जानते हैं–ख़त लिखने से मनुष्य की आत्मिक, मानसिक तृप्ति मिलती है, यह अभिव्यक्ति का बड़ा सच्चा, सरल और सहज तरीका है। पता है–ख़त अपने में साहित्यिक गुणवत्ताएं भी रखते हैं। मित्रों, हम इस लुप्त होती विधा को साहित्य में न सिर्फ जीवित, बल्कि पल्लवित भी करना चाहते हैं। अतः किसी अज्ञात व्यक्ति को सम्बोधित कर सकते हैं और एक निजी, रोमॉनी, सोद्देश्य, आक्रोश से भरे–किसी भी विषय पर ख़तों के मार्फत लिख भेजिए। मेरे कम लिखे को अधिक समझिएगा, इस ख़त को ही अपना निमंत्रण पत्र समझिएगा।

भूलिएगा नहीं, मैं रोज डाकिए का इंतजार करता हूं।

प्रतीक्षारत

आपका बस्तर पाति

-

लालाजी की कविताएंः– मिमयाती जिन्दगी दहाड़ते परिवेश

(कविता क्रमांक–1)

उन्मन हैं मनचीते लोग,
वर्तमान के बीते लोग।।
भीतर–भीतर मर–मर कर,
बाहर–बाहर जीते लोग।
निराधार खून देखकर
घूंट खून के पीते लोग।
और उधर जलसों की धूम,
काट रहे हैं फीते लोग।
भावशून्य शब्दों का कोश,
बांट रहे हैं रीते लोग।

(कविता क्रमांक–2)

न तुम हो न हम हैं
यहां भ्रम ही भ्रम है।
दिशाहीन राहें,
भटकते कदम हैं
नहीं कोई ब्रम्हा,
कई क्रूर यम हैं।
मिले सर्जना को,
गलत कार्यक्रम हैं।
यहां श्रेष्ठता में,
पुरस्कृत अधम है।
किसी के भी दुखड़े
किसी से न कम है।
पुकारा जिन्होंने,
अरे, वे वहम हैं।

(कविता क्रमांक–3)

विकल करवटें बदल–बदल कर
भोगा हमने बहुत जागरण,
गहराई चुप बैठे सुनती
'सतह' सुनाते जीवन दर्शन।
देव–दनुज के संघर्षों का
हमने यह निष्कर्ष निकाला,
'नीलकण्ठ' बनते विषपायी
जब–जब होता अमृत–मंथन।
सफल साधना हुई भगीरथ
नयनों में गंगा लहराई,
सांठ–गांठ में उलझ गये सुख,
पीड़ा आई पीड़ा के मन।
ऐसे–ऐसे संदर्भों से
जुड़–जुड़ गई सर्जना अपनी,
हृदय कर रहा निन्दा जिनकी
मुंह करता है उनका कीर्तन।
गूंज रही है बार–बार कुछ
ऐसी आवाजें मत पूछो;
नहीं सुनाई देता जिनमें
जीवन का कोई भी लक्षण।

(कविता क्रमांक–4)

मचल उठे प्लास्टिक के पुतले,
माटी के सब धरे रह गये।
जब से परवश बनी पात्रता,
चमचों के आसरे रह गये।
करनी को निस्तेज कर दिया,
इतना चालबाज कथनी में;
श्रोता बन बैठा चिंतन,
मुखरित मुख मसखरे रह गये।
आंगन की व्यापकता का,
ऐसा बंटवारा किया वक्त ने;
आंगन अंतर्ध्यान हो गया,
और सिर्फ दायरे रह गये।
लूट लिया जीने की सारी,
सुविधाओं को सामर्थों ने;
सूख गयी खेती गुलाब की,
किंतु 'कैक्टस' हरे रह गये।
जाने क्या हो गया अचानक,
परिवर्तन के पांव कट गये;
'रीते–पात्र' रह गये रीते,
'भरे–पात्र' सब भरे रह गये।

(कविता क्रमांक–5)

दर्द ने भोगे नहीं जिस दिन नयन,
मिल गया उस दिन हृदय को गीत धन।
जब अंधेरा पी चुके सूरजमुखी,
तब दिखाई दी उन्हें पहली किरण।
नींद टूटी जिस सपन की शक्ति से,
चेतना के घर मिली उसको दुल्हन।
फूल जब चुभ गये, तो मन को लगा,
है बड़ी विश्वस्त कांटों की चुभन।
देखते ही बनी बिजली की चमक,
जब घटाओं से घिरा उसका गगन।
छांह के अहसान से जो बच गया,
धूप के दुख ने किया उसको नमन।

(कविता क्रमांक–6)

दखा, पाहली बिहान
बेड़ा जायसे किसान
कुकड़ा बासली गुलाय
हाक देयसे उजेंर
आंधार हाजली गुलाय
तारा मन चो होली हान
दखा, पाहली बिहान।
मछरी, केंचुआ चाबुन जाय
कोकड़ा मछरी गीलुन खाय
ढोंडेया धरे मेंडकी के
सोनू दादा जाल पकाय
कोएंर–कोएंर होते खान
दखा, पाहली बिहान।
दसना छूटली पनाय
मिरली मारग मन के पांय
लेकी गेली पानी घाट
पानी लहरी मारून जाय
हाजुन गेली रात–मसान
दखा, पाहाली बिहान।

(कविता क्रमांक–7 कविता क्रमांक–6 का अनुवाद)

देखो, सबेरा हो गया है
किसान खेत जा रहा है
सब तरफ मुर्गे बोले
सब तरफ ढेकीयां बजी
उजाला पुकार रहा है
अंधेरा सब तरफ खो गया है
सितारों की हानि हुई है
देखो सुबह हुई है।
मछली, केंचुआ चबा रही है
बगुला, मछली निगल रहा है
ढोंढीया–सांप, मेंढकी पकड़ रहा है
सोनू दादा जाल फेंक रहा है
चिड़ियों के चहकते ही
देखो, सुबह हुई है।
बिस्तर कब छूट गया है
रास्तों को पांव मिल गये
लड़की पनघट चली गयी
पानी में लहरें उठ रही हैं
चुडैल रात नहीं रही
देखो, सुबह हुई है।

लालाजी की कविताएंः– मिमयाती जिन्दगी दहाड़ते परिवेश

(कविता क्रमांक–8)

भोर के हुस चुग गये मोती,
बैठ कर तमिस्त्रा कहीं रोती है।
मौत बेवक्त भला क्यों आती
जिन्दगी यदि जहर नहीं बोती।
अस्मिता चिंतन की हरने को
चिंता रात भर नहीं सोती।
आदमी व्यक्त जब नहीं होता,
चेतना, चेतना नहीं होती।
वक्त बदले कि व्यवस्था बदले,
मनुष्यता पहाड़ ही ढोती।
पीर हृदय की युवा हो गयी,
कोहरे में हर दिशा खो गयी।
ऐसी वायु चली मधुवंती,
संवेदनाशीलता सो गयी।
चिथड़ों पर पैबंद टांकते,
जिजीविषा सुईयां चुभो गयी।
शब्द ब्रम्ह की चाटुकारिता,
अर्थों की अर्थियां ढो गयी।
मान गये चुप्पी का लोहा,
मन को अपने में समो गयी।
गयी सुबह कुछ ऐसे लौटी,
सूरज की लुटिया डुबो गयी।

(कविता क्रमांक–9)

हम–तुम इतने उत्थान में हैं
भूमि से परे, आसमान में हैं।
तारे भी उतने क्या होंगे,
दर्द–गम जितने इंसान में हैं।
सोना उगल रही है माटी,
क्योंकि हम सुनहले विहान में हैं।
मोम तो जल–जल कर गल जाता,
ठोस जो गुण है, पाषाण में है।
मौत से जूझ रहे हैं कुछ,
तो कुछ की नज़रें सामान में हैं।
मुर्दो का कमाल देखो,
जीवित लोग श्मशान में हैं।
मन में बैठा है कोलाहल,
और हम बैठे सुनसान में हैं।
किसने कितना कैसे चूसा,
प्रश्न ही प्रश्न बियावान में हैं।
सोचता हूं, उनका क्या होगा,
मर्द जो अपने ईमान में हैं।

(कविता क्रमांक–10)

छूट गये वनपाखी, रात के बसेरे
जाल धर निकल पड़े, मगन मन मछेरे
पानी में संत चुप खड़े उजले–उजले,
कौन सुनेगा मछली व्यर्थ किसे टेरे।
कानों से टकराती सिसकियां नदी की,
पुरवा जब बहती हैं रोज़ मुंह अंधेरे।
रोशनी कहां तुझसे हटकर ओ रे मन
ना चंदा के घर ना सूरज के डेरे।
जुड़े ही नहीं जिद्दी, किसी वंदना में
कैसे समझाऊं मैं हाथों को मेरे।

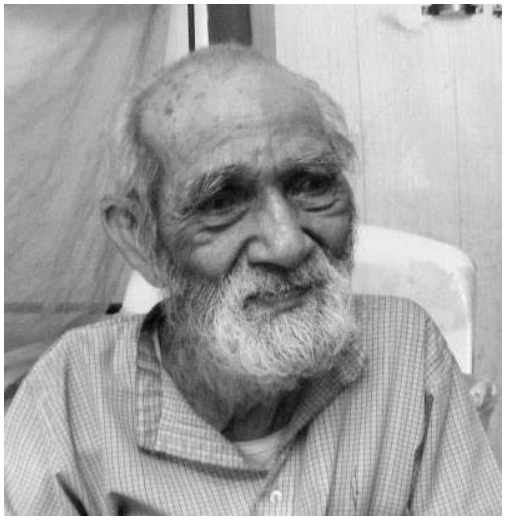

(कविता क्रमांक–11)

अल्पजीवी पुष्प इतना कर गया,
सूर्य को शबनम पिलाकर झर गया।
साथ मेरे सिर्फ सन्नाटा रहा,
चांद सिरहाने किरण जब धर गया।
कर दिया तिमिर ने दुर्बल बहुत,
मन अभागा रौशनी से डर गया।
लहलहाई जिन्दगी की क्यारियां,
किन्तु सोने का रिण सब चर गया।
हृदय तड़पा तो छलक आये नयन,
स्नेह सारा हृदय हेतु निथर गया।
क्या करे कोई सुराही क्या करे,
यदि किसी कण्ठ में विष सर गया।

(कविता क्रमांक–12)

दहकन का अहसास कराता,
चंदन कितना बदल गया है;
मेरा चेहरा मुझे डराता,
दरपन कितना बदल गया है।
आंखों ही आंखों में,
सूख गई हरियाली अंतर्मन की;
कौन करें विश्वास कि मेरा,
सावन कितना बदल गया है।
पांवों के नीचे से,
खिसक–खिसक जाता सा बात–बात में;
मेरे तुलसी के बिरवे का,
आंगन कितना बदल गया है।
भाग रहे हैं लोग मृत्यु के,
पीछे–पीछे बिना बुलाये;
जिजीविषा से अलग–थलग यह,
जीवन कितना बदल गया है।
प्रोत्साहन की नई दिशा में,
देख रहा हूं, सोच रहा हूं;
दुर्जनता की पीठ ठोंकता,
सज्जन कितना बदल गया है।

(कविता क्रमांक–13)

जिसके सर पर धूप खड़ी है,
दुनिया उसकी बहुत बड़ी है।
ऊपर नीलाकाश परिन्दे,
नीचे धरती बहुत बड़ी है।
यहां कहकहों की जमात में,
व्यथा कथा उखड़ी–उखड़ी है।
जाले यहां कलाकृतियां हैं,
प्रतिभा यहां सिर्फ मकड़ी है।
यहां सत्य के पक्षधरों की,
सच्चाई पर नज़र कड़ी है।
जिसने सोचा गहराई को,
उसके मस्तक कील गड़ी है
और कहां तक प्रगति करेगी,
बसती यहां कहां पिछड़ी है।

बातचीत – महावीर अग्रवाल

सामाजिक आर्थिक बदलाव जब भी होगा, उसमें लेखन की भूमिका अवश्य होगी – लाला जगदलपुरी।

साभार:: ***साहित्य–शिल्पी*** ई–मेगजीन

महावीर अग्रवाल– कविता लिखना आपने कब शुरू किया ? यदि स्मरण हो तो यह भी बताइए कि आपकी प्रथम कविता का विषय क्या था ? साथ ही यह भी बताइए कि आपकी प्रथम कविता किस पत्रिका में और कब छपी थी ?

लाला जगदलपुरी– कविता लिखना मैंने सन् 1936 से शुरू किया, किन्तु प्रकाशन की दिशा में सन् 1939 से प्रत्यनशील हुआ। गाँधी जी पर केन्द्रित मेरी एक गेय रचना बम्बई के 'श्री वेंकटेश्वर समाचार' साप्ताहिक में सन् 1939 में प्रकाशित हुई थी।

महावीर अग्रवाल– आप कविता क्यों लिखते हैं ?

लाला जगदलपुरी– मैं कविता इसलिए लिखता हूँ क्योंकि काव्य लेखन में मुझे चरम तुष्टि की अनुभूति होती हैं, ऐसी तुष्टि की जो केवल कविता से ही मिलती है।

महावीर अग्रवाल– आप अपनी रचना प्रक्रिया के विषय में कुछ बताइए।

लाला जगदलपुरी– गीत, गीतिकाएं, मुक्तक और छोटी कविताएँ प्रायः चलते–फिरते अथवा लेटे–लेटे लिख लेता हूँ, परन्तु गद्य–लेखन और लम्बी कविताओं का सृजन कार्य कमरे में बंद होकर बैठे–बैठे करना पड़ता है। राह चलते गीत बुनना मुझे अच्छा लगता है। अपने आप में आधार पंक्तियों की गुनगुनाहट चलती रहती है और तब तक चलती रहती हैं, जब तक कि संबंधित गेय–रचना का उद्भव नहीं हो जाता और तब वह उपलब्धि मुझे जो तुष्टि देती है उसका एहसास केवल रचनाकार ही कर सकता है। यात्रा के दौरान 'बस' या 'ट्रेन' में बैठे–बैठे मुझे केवल कविता सूझती है। इसी कारण मेरी चुप्पी मैं वाचक सिद्ध होने वाला कोई भी मुखर सहयात्री मुझे कष्ट कर लगता है। मेरे साथ अक्सर ऐसा होता रहता है। दिन भर तो बच्चे शोरगुल करते रहते हैं और बिस्तर पर जाते ही बड़ी रात तक शब्द चिल्लाते रहते हैं, जब तक कि उन्हें गीत, ग़ज़ल, मुक्तक या छोटी कविता की कतारों में आराम से न बिठा दूं। परन्तु यदि भूले से किसी काव्य पंक्ति में किसी अयोग्य शब्द की घुसपैठ हो गई तब उसे वह स्थल इस कदर काट खाता है कि उनकी छटपटाहट सुनते ही बनती है और तब उसे रिक्त.....करना ही पड़ता है। इसके उपरान्त रिक्त स्थान पर प्रतीक्षातुर अधिकारी शब्द को बिठाकर रचना को सार्थक बनाता हूं। आवश्यकता पड़ने पर अभिव्यक्ति के लिए मैं किसी भी भाषा अथवा लोकभाषा से उपयुक्त शब्द ग्रहण करता हूँ।

महावीर अग्रवाल– वस्तु और शिल्प में आप किसे प्रमुखता देते हैं और क्यों ?

लाला जगदलपुरी– 'वस्तु' और 'शिल्प' में मैं वस्तु को अधिक महत्व देता हूँ, क्योंकि वस्तु में रचना का उद्देश्य निहित है। शिल्प–संयोजन के बिना, वस्तु को कविता का रूप दे सकना संभव तो नहीं होता किन्तु यदि शिल्प कथ्य पर भार तो गया, तो निश्चित ही कविता का गर्भपात हो जाता है। वस्तु से शिल्प का जब मर्यादित संसर्ग सधता है, तभी एक सार्थक, सुन्दर और असरदार कविता का जन्म होता है।

महावीर अग्रवाल– कविता में बिम्ब, प्रतीक और मिथकों का उपयोग किस तरह हो ?

लाला जगदलपुरी– बिम्बों, प्रतीकों और मिथकों के प्रयोग में इस बात का ध्यान रखने की बड़ी आवश्यकता है कि वो कथ्य को अनुकूल एवं स्वाभाविक–संप्रेषण दे सकें।

महावीर अग्रवाल– कविता की भाषा को लेकर अक्सर प्रश्न खड़ा किया जाता है। आप बताइए कि कविता की भाषा कैसी होनी चाहिए ?

लाला जगदलपुरी– मेरी समझ में समकालीन काव्य लेखन की भाषा अधिकांश कविता प्रेमियों को संतोष देती हैं, यद्यपि कतिपय कविता प्रेमी यह चाहते हैं कि कविता की भाषा आम आदमी की भाषा से कुछ हटकर हो जिससे कविता की बुनाहट में कवितापन के लिए गुंजाइश बन सके। वैसे कविता के केन्द्रीय विचार के साथ सामंजस्य स्थापित कर उसे सहज सम्प्रेषण दे सकने योग्य भाषा ही कविता की भाषा होनी चाहिए। ऐसी भाषा जो कविता की आत्मा को उजागर कर सके।

महावीर अग्रवाल– पाठक वर्ग की आम शिकायत है कि कविताएं दिन–ब–दिन दुरूह होती जा रही है, इसलिए लोग कविताओं से जुड़ नहीं पा रहे है, इस पर आपके क्या विचार हैं ?

लाला जगदलपुरी– कविताओं के दिन–ब–दिन दुरूह होने और उनसे पाठक वर्ग के कटने की बात मुझे सही लगती है। सच तो यह है कि काव्य विधा के तहत सर्वाधिक प्रयोग हैं, होते जा रहे हैं, और आगे भी होते रहने की संभावना है। ये प्रयोग–धर्मी, चौकाऊ शिल्प कथ्यों पर हावी हो जाते हैं। उन्हें उबरने नहीं देते जबकि केवल शिल्प को कविता नहीं कहा जाता है। कविता ही न हो, केवल शिल्प हो, तो पंक्तियां दुरूह कैसे नहीं लगेगी। कविता के केवल रूप हों, आत्मा न हो, तो उससें कविता का भ्रम हो जाता है। किन्तु यह, कविता के वस्तुवादी पक्ष की बात हुई। समकलीन कविता का रूपवादी पक्ष इस

विचार से तालमेल नहीं बिठाता। वह केवल रूप पर बल देता है। सीमित प्रबुद्ध पाठक वर्ग के लिए लिखी गई, जन भावना को अभिव्यक्ति देती जनवादी कविता यदि आम पाठक की समझ में न आयें, तो ऐसी उपलब्धि का क्या तात्पर्य? तुलसी, सूर, कबीर आदि का काव्य सृजन जन–मन में कितना रच बस गया है। उनमें महज सपाट–बयानी तो नहीं है।

महावीर अग्रवाल– लेखन एक सामाजिक दायित्व है। अतः आप बताइए कि लेखक का क्या कुछ भी निजी नहीं रह जाता ?

लाल जगदलपुरी– लेखन एक सामाजिक दायित्व है, इसमें संदेह नहीं। इसी कारण लेखक के निजत्व की परिभाषा बदल जाती है। रचनाकार जब साधना विभोर हो जाता है, तब वह व्यक्तिगत होकर भी व्यक्तिगत नहीं रह जाता। उसका केवल आर्थिक पक्ष ही उसका रह जाता है। शेष उसका सब कुछ समष्टि को ही समर्पित हो जाता है। तब उसके निजत्व के अंतर्गत सारा ब्रहमाण्ड आ जाता है और इतना सब उसका निजी हो जाता है। ऐसी स्थिति में लेखक का अपना कुछ भी निजी न रह जाने का प्रश्न ही कहां उठता है।

महावीर अग्रवाल– कवि के अंदर व्यक्ति और समाज के बीच हितों का द्वंद्व क्या किसी सार्थक लेखन की भूमिका बनाता है ?

लाला जगदलपुरी– निः संदेह, कवि के अंदर वैयक्तिक और सामाजिक हितों के बीच का द्वंद्व ही किसी सार्थक लेखन के लिए आधार बनता है।

महावीर अग्रवाल– लेखन के कारण आपको व्यक्तिगत जीवन में कभी किसी संघर्ष का सामना करना पड़ा ?

लाला जगदलपुरी– लेखन के कारण मुझे अपने व्यक्तिगत जीवन में अनेक संघर्ष करने पड़े और उन तमाम संघर्षों की एक बड़ी वजह रही थी – साहित्य–चोरी, जिसे आज का बौद्धिक वर्ग अपराध नहीं मानता। सन् 1960 में विद्यासदन, छिंदवाड़ा के एक श्याम एम.वर्मा ने मूलोद्योग के अंतर्गत मुझसे तीसरी कक्षा के लिए तकली के गीत लिखाये और पूरा संकलन हड़प लिया। 1960 में ही एक स्थानीय (जगदलपुर स्थित) व्यक्ति ने मेरे एक लेख को दिल्ली से प्रकाशित होने वाले तात्कालीन मासिक 'वन्य–जाति' में अपने नाम से प्रकाशित कराया था। मेरे साथ इस प्रकार की घटनाएं आगे भी घटती ही रही थी। सन् 1989 में भारतीय मानव विज्ञान सर्वेक्षण, कलकत्ता से 'माड़िया लोक–कथा' नामक एक शोध ग्रंथ प्रकाशित हुआ। उसके लेखक हैं, संस्था के एक कोई अधिकारी – डॉ. नारायण प्रसाद श्रीवास्तव। इस सरकारी अधिकारी ने तो कमाल ही कर दिया। मेरी प्रकाशित पुस्तक 'हल्बी लोक कथाएं, में से अपनी पुस्तक 'माड़िया लोक–कथा में कुल तेरह लोक–कथाएं ज्यों की त्यों उतार कर धर दी। उसने न तो मेरा नामोल्लेख किया, न ही संदर्भ–सूची में मेरी उस किताब का हवाला दिए। निश्चय ही मेरा नामोल्लेख न करने तथा संदर्भ सूची में मेरी पुस्तक का हवाला न देने के पीछे, 'माड़िया लोक–कथा के लेखक की अपनी व्यक्तिगत मजबूरी थी। डॉ. नारायण प्रसाद श्रीवास्तव को बस्तरांचल की माड़िया लोक कथाओं पर शोध करना था। फिर वह माड़िया लोककथा में हल्बी लोककथाओं की मिलावट वाली स्वतः की गोपनीयता को स्वयं कैसे भंग करते। इस प्रकरण के तहत डॉ. नारायण प्रसाद श्रीवास्तव ने बस्तर अंचल के लोक कथा साहित्य के साथ अंधेर तो किया ही, साथ ही अपनी शासकीय संस्था को भी चूना लगाया और 'माड़िया लोक–कथा' के पाठकों के साथ भी धोखाधाड़ी की इस रचना अपहरण काण्ड को लेकर खूब पेपरबाजी हुई और संबंधित संस्था के संचालक के पास संस्कृति–विभाग, मध्यप्रदेश शासन, भोपाल द्वारा शिकायत पत्र भी भेजा गया, परन्तु डॉ. नारायण प्रसाद श्रीवास्तव दूध के धुले ही प्रमाणित हुए, जबकि पूरा प्रकरण प्रमाणित है। डॉ. श्रीवास्तव की वह चिट्ठी मेरे पास अब तक सुरक्षित है, जिसमें वह अपनी लड़खड़ाती–हकलाती भाषा में स्वयं फँस गये हैं। साहित्य चोरी की इन वारदातों के कारण मुझे काफी परेशानियां हुई, खूब संघर्ष करने पड़े, परन्तु आज मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि ऐसे संघर्षों में पड़कर मानसिक तनाव पाल कर, समय और शक्ति का अपव्यय करना उचित नहीं होता क्योंकि राजनीतिज्ञ खजूर का पेड़ इतना ऊँचा होता है कि उसके आगे साहित्यकार निपट बौना लगता है।

महावीर अग्रवाल– क्या, रचनाकार के लिए वैचारिक प्रतिबद्धता का होना आप जरूरी मानते हैं ? यदि हां तो क्यों ? यदि नहीं तो क्यों ?

लाला जगदलपुरी– रचनाकार स्वभावतः मानवीय संवेदना के किसी न किसी पक्ष से परोक्ष रूप से प्रतिबद्ध तो रहता ही हैं, फिर प्रतिबद्धता के नाम पर प्रतिबद्धता क्यों ? मेरी दृष्टि में मुक्त चिंतन से प्रेरित अप्रतिबद्ध, रचनात्मक लेखन ही निष्पक्ष लेखन कहलाने का हकदार होता है। अप्रतिबद्ध लेखन का मुक्त चिंतन प्रवाह एक नदी की तरह अपने उद्गम से लेकर संगम तक गतिशील, प्रभावपूर्ण, ओजस्वी, उपयोगी और प्रेरक सिद्ध होता है।

महावीर अग्रवाल– वर्तमान में क्या लेखन के द्वारा सामाजिक आर्थिक बदलाव संभव है ?

लाला जगदलपुरी– दुनिया का इतिहास यह बताता है कि सामाजिक और आर्थिक बदलाव जब भी हुए हैं तो उसमें कलमकारों की भूमिका किसी न किसी रूप में अवश्य रही है। औद्योगिक क्रांति और फ्रांस की राज्य क्रांति के फलित रूप में रचनाकारों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। बीसवीं शताब्दी में मीडिया इतना शक्तिशाली हो गया है कि अब केवल लेखन द्वारा सामाजिक, आर्थिक बदलाव संभव नहीं दिखलाई पड़ता। इसके बावजूद भी मैं यह मानता हूँ कि सामाजिक आर्थिक बदलाव जब भी होगा, चाहे वह प्रिंट मीडिया के माध्यम से हो या इलेक्ट्रानिक मीडिया द्वारा हो, उसमें लेखन की भूमिका अवश्य होगी।

महावीर अग्रवाल–आप किस कवि से अधिक प्रभावित हैं या रहे हैं ? उनकी कुछ उल्लेखनीय रचनाएं जिनसे आपके लेखन को गति या दिशा मिली ?

लाला जगदलपुरी–वैसे तो मेरे प्रिय कवियों की एक लम्बी सूची बन जाती है, परन्तु कबीर और निराला ने मुझे अत्यधिक प्रभावित किया है। कबीर के पदों में – 'घुंघट का पट खोल रहे, तोहे पिया मिलेंगे। घट–घट में वह साई रमता, कटुक बचन मत बोल रे।' और 'झीनी–झीनी बीनी चदरिया, काहे कै ताना, काहें कै झरनी, कौन तार से बीनी चदरिया, इंगला–पिंगला ताना भरनी, सुख मनन तान से बीनी चदरिया, सो चादर सुर नर मुनि ओढ़े, ओढ़ के लीनी चदरिया।।' बड़े मनभावन लगते हैं। और दोहों में 'सांई इतना दीजिये, जामे कुटुम समाय, मैं भी भूखा न रहूं, साधु ना भूखा जाए, साधू संग्रह ना करे, उदर समाता लेय, आगे पीछे हरि खड़े, जब मांगू तब देय, पाथर पूजे हरि मिलैं, तो मैं पूजूँ पहार, यामें तो चाकी भली, पीस खाय संसार' आदि अपार चिंतन–सुख देते हैं। महाप्राण की काव्य चेतना का मैं कायल हूं 'परिमल' की अधिकांश रचनाएं मुझे बहुत भाती है। 'धारा बहने दो, रोक–टोक से कभी नहीं रूकती है, यौवन मद की बाढ़ नदी की, किसे देख झुकती है ? 'आवाहन'– एक बार बस और नाच तू श्याम, सामान सभी तैयार, कितने ही हैं असुर चाहिए कितने तुझको हार ? 'भिक्षुक– वह आता, दो टूक कलेजे करता पछताता पथ पर आता, और 'तोड़ती पत्थर' – वह तोड़ती पत्थर, देखा मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर, वह तोड़ती पत्थर, आदि रचनाएं गहरे उतरती हैं।

महावीर अग्रवाल–कविता भी एक यात्रा है। आप अपने समकालीनों में किन कवियों को अपना सहयात्री पाते हैं ? अपनी पसंद की कुछ कविताओं और उनके कवियों के बारे में बताइए।

लाला जगदलपुरी–मेरे समकालीन कवि मित्र अब मेरे सहयात्री नहीं रह गये हैं।

महावीर अग्रवाल–कविता के विकास और सार्थक फैलाव में रेडियो, दूरदर्शन और कवि सम्मेलनों पर आपके क्या विचार हैं ?

लाला जगदलपुरी–खासकर कवि सम्मेलन में लतीफों और चुटकुलों के बीच यदि दुर्भाग्य से कविता की पहुंच हो ही गई, तो आप यह निश्चित जानिये कि ठहाके उसे दुर्घटनाग्रस्त कर ही देंगे। दूरदर्शन और रेडियो के प्रसारण में भी कविता का लगभग ऐसा ही कीर्तिमान देखने–सुनने को मिलता रहता है। कविता के विकास और उसके सार्थक फैलाव के लिए इन माध्यमों को भी उपयुक्त बनाने की चेष्टा की जानी चाहिए।

महावीर अग्रवाल–कविता पोस्टर्स को आप किस रूप में देखते हैं ? क्या कविता को लोकप्रिय बनाने और चेतना के विकास में इनकी कोई सार्थक भूमिका बन सकती हैं ?

लाला जगदलपुरी–पोस्टर–कविता से चेतना उत्पन्न होने में मुझे संदेह है। 'पोस्टर' कहने मात्र से ही ध्यान, एकाएक चौकाऊं व्यवसाय तथा सस्ती राजनीति की ओर आकर्षित होता है। 'पोस्टर–कविता' को लोग एक तमाशे की तरह देखते और पढ़ते हैं। लोगों के इस प्रकार देखने–पढ़ने से कविता का सही प्रचार–प्रसार नहीं हो सकता है। हाँ इससे उसे सस्ती लोकप्रियता अवश्य प्राप्त हो जाती है।

महावीर अग्रवाल–कविता के अतिरिक्त और किस विधा में लिखना अच्छा लगता है ? क्या अन्य विधा में लेखन करने का भी कोई कारण है ?

लाला जगदलपुरी–कविता के अलावा मैं समय–समय पर आकाशवाणी और पत्र–पत्रिकाओं की मांग पर या आत्मप्रेरित होकर निबंध, नाटक, कहानी, संस्मरण आदि भी लिखा करता हूँ।

महावीर अग्रवाल–और अंत में कविता की आलोचना और उसके आलोचकों के विषय में आपकी क्या राय है ?

लाला जगदलपुरी–नई आलोचना जब यह मान कर चलती है कि कविता रूप ही सब कुछ है और उसका अर्थ है महत्वहीन, तब मुझे ऐसा एहसास होता है कि न तो 'कविता' रही न ही आलोचना। सच तो यह है कि किसी संस्था विशेष से प्रतिबद्ध आलोचक की आलोचना से निष्पक्षता की आशा की ही नहीं जा सकती।

इन्द्र धनुषी व्यक्तित्व – लाला जगदलपुरी

रऊफ़ परवेज़
बालाजी वार्ड
जगदलपुर
जिला–बस्तर छ.ग.
फोन–09329839250

एक छोटा सा कसबानुमा शहर, जगदलपुर, जिसके एक पिछड़े मुहल्ले में कवि निवास है, जो लालाजी के सिवा किसी और का नहीं। लालाजी ने इसी निवास में आँखे खोली, उस निवास ने उन्हें छाती से लगाए रखा और यहीं उन्होंने अंतिम सांसें ली।

1920 में जन्में लालाजी ने 1936 से लिखना प्रारम्भ किया तो अपने नाम लालाराम श्रीवास्तव से 'राम श्रीवास्तव' हटाकर 'जगदलपुरी' संयुक्त कर लिया और बस्तर जिले के जगदलपुर से ऐसे एकाकार हुए कि साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में जगदलपुर की पहचान बन गए।

बचपन में ही पिता का साया सर से उठ गया। अभावों और संघर्षों में जीते जीवन की शिक्षा–दीक्षा को अपना मार्गदर्शक बनाया। वह स्वीकारते कि साहित्यिक लेखन की प्रवृत्ति उनमें कैसे आई वह स्वयं नहीं जानते। आसपास का वातावरण तब भी असाहित्यिक था और आज भी असाहित्यिक है। फर्क इतना रहा कि तब के लोग सब अल्प शिक्षित थे और आज के व्यक्ति सब उच्च शिक्षित हैं।

लालाजी कहते थे कि जिन दिनों उन्होंने अपने जन्म स्थान जगदलपुर में अपने ढंग से अपने स्तर पर साहित्यिक लेखन की शुरूआत की थी, उन दिनों उनके आसपास का असाहित्यिक वातावरण बहुत ही बोझिल, उबाऊ, संकीर्ण और अत्यंत कष्टप्रद था, क्योंकि उनके आसपास उस वातावरण में स्वतंत्र चिन्तन, लेखन के लिये कोई गुंजाइश नहीं थी। न घर में न बाहर। निष्पक्ष होकर बोलना बताना भी मना था। राष्ट्रीय विचारों के अखबारों को पढ़ना भी प्रतिबन्धित था। ऐसे शुष्क ऐसे और विपरीत माहौल में, अकल्पनीय अभिव्यक्ति संकट से, उस काल–खंड में अपनी वैचारिक–जिजीविषा की रचनाधर्मिता की रक्षा करते हुए उनके भीतर का रचनाकार सृजन कर्म के इस नए दौर तक पहुंच सका था।

वह कहते थे कवि सम्मेलनों की पुरानी परम्परा, एक स्वस्थ–परम्परा थी जिसके तहत मंच पर प्रायः सशक्त और शालीन रचनाएं ही स्थान पाती थी। तब मंच पर लोग पेंगे नहीं चलाते थे। वहां कविताओं के बीच लतीफों और चुटकुलों की घुसपैठ नहीं हो पाती थी। हूटिंग का चलन नहीं था। आज की तरह मंच बदचलन नहीं था।

जहां भी कवि सम्मेलन होता वह वहाँ निश्चित रूप से चले जाते। कड़की में भी गांठ के पैसे खर्च कर कवि सम्मेलन भोगने में उन्हें आनन्द आता था। बाद में लोग मार्ग–व्यय दे कर बुलाने लगे थे।

शब्द चयन के विषय में लालाजी का मानना था कि सृजन–कर्म की तन्मयता के क्षणों में रचनाकार अपने कथ्य के लिये उपयुक्त शब्दों की तालिका लेकर रचना करने नहीं बैठता। इसलिये शब्द चयन की बात अस्वाभाविक लगती है। सच तो यह है कि उन क्षणों में शब्द स्वयं कथ्य ये प्रेरित प्रभावित होकर उसे अभिव्यक्ति देने के लिये अनुशासित हो कर पंक्तियों में बैठते चले जाते हैं।

अभिव्यक्ति के दायरे में वह किसी भी भाषा या बोली के शब्द–प्रवेश का हार्दिक स्वागत करते थे। ऐसे शब्दों को जो आम बोल–चाल में रच बस गए हों, आदमी को आदमी से जोड़ने में सहायक सिद्ध होते हों, वह शाब्दिक साम्प्रादियकता के कट्टर विरोधी थे। वह कहते थे कि भाषा न तो हिन्दू होती है, न मुस्लिम, न ही क्रिश्चियन होती है परन्तु इसका यह मतलब भी नहीं कि भाषा का कोई धर्म ही नहीं होता। उसका धर्म होता है– ''मानव धर्म''। भाषा किसी की बपौती नहीं होती। उस पर सब का समान अधिकार होता है। भाषा ऊंच नीच, गोरे काले आदि का भेदभाव नहीं बरतती। भाषा समय पर शस्त्र बनकर साथ देती है और समय पर मरहम बन कर राहत पहुंचाती है। उसे व्यर्थ के झगड़े में डालकर दुख नहीं पहुंचाना चाहिए।

उन्होंने अनुवाद, लेख, कहानियाँ, नाटक, बाल कहानियाँ आदि पर भी काम किया। हिन्दी और हल्बी में उनकी चौदह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, और अनेक पांडुलिपियां प्रकाशन की राह देख रही हैं।

उन्हें मौत से भय नहीं लगता था। वह मानते थे कि जब मौत आएगी, वह उसे खुशी से गले लगा लेंगे, उसका स्वागत करेंगे, उसे पूरा सम्मान देंगे और वास्तव में वैसा ही हुआ। वह चुपचाप चिरनिन्द्रा में लीन हो गये। एक लम्बी साहसिक साहित्यिक यात्रा पर विराम लग गया।

लालाजी ने छत्तीसगढ़ी, लोक बोली हल्बी, भतरी में भी सृजन कार्य किया है। बस्तर के लोग संस्कृति, लोक कला, लोक जीवन, लोक साहित्य और लोक संगीत के प्रमाणिक स्वरांकन, लेखन और सर्वेक्षण के लिये अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। बस्तर उनकी मातृभूमि होने के साथ कर्मभूमि बन गया। यह कलम का सिपाही, साहित्य साधक अपनी डगर पर अकेला

ही चलता रहा, कर्म किये जाता रहा, उने न तो मंजिल का पता था और न ही मंजिल की तलाश, मिले या न मिले कोई शिकवा नहीं। सारी रचनाओं में स्वयं के अनुभवों को अभिव्यक्ति है। लालाजी कहते हैं–

किस किस से बोलें बतियाएं सब अच्छे हैं / आगे, पीछे, दायें, बायें, सब अच्छे हैं।
सब को खुश, रखने की धुन में सब के हो लें / मिल बैठे सब, पियें पिलायें, सब अच्छे हैं।
भलमनसाहत की पोशाकें पहन–ओढ़कर / राजनीति में आंख लड़ायें, सब अच्छे हैं।
एक वर्ष में, एक दिवस हिन्दी के हो लें / भाषण दें, तालियां बजाएं, सब अच्छे हैं।

बस्तर की मिट्टी, बस्तर की सुबहो शाम, बस्तर के आते–जाते मौसम, सभी का प्रभाव लाला जी के जीवन में था। वह खुली आंखों से देखते ही नहीं बल्कि उन्हें मन की गहराईयों में उतारते थे। लाला जी का आत्म दर्शन, शब्दों का चयन और भावनाओं से ओतप्रोत उनके गीत अपने भीतर बस्तर की घाटियों, नदी, नालों, गुफाओं और आब शारों को संजोए हुए हैं। वह कहते हैं–

मैं इन्द्रावती नदी के बूंद–बूंद जल को /अपने दृगजल की भांति जानता आया हूं।
मेरे सपनों की ऋतु वसंत, मद भरे–भरे /रम रहे मनोरम वनस्थली के वन–वन में।
तरू–तरू पर कूक रहे पिक मेरे प्राणों के /टहनी–टहनी, फुगनी–फुनगी के शोभन में
मैं चितरकोट के पाषाणों पर फूट पड़ा /तीरथगढ़ मेरे दर्द गा रहा निर्जन में।
तेलिनघाटी की हर भांवर के तय होते /हर विपदा को सहचरी मानता आया हूं।
मेरे जीवन के तम का डेरा कोटमसर /जगमग प्रकाश गहवर में जिसपर न्योछावर।
मेरे मन–मंदिर के विग्रह छत विक्षत पड़े /जा देखे बारसूर में कोई यायावर।
प्रतिपल दन्तेवाड़ा में विनत शीश मेरा /बैलाडीला पर गर्वित मेरा उन्नत सर।
दुख जैसे पर्वत, घाटी मेरे संयोगी /सब की सुन–सुन जिनकी बखानता आया हूं।
मैं इन्द्रावती नदी के बूंद–बूंद जल को /अपने दृगजल की भांति मानता आया हूं।

लाला जी का हल्बी गीत कृषि भूमि और किसान की आपबीती बयान करता है –

छाती असर बेड़ा तुमचो /बांहा असर पार।
फटई असर धान उड़ले /भरे दे कोठार।
सुना खेतियार हो /सुना खेतियार
उदिया जोन चोईरा धरून /काटवां आंधार।
लेहरा एउन काय करे दे /मन चो दिया बार। /सुना खेतियार हो
रूख–छायं ने चिंउर–चावर /होए से कोल्हार।
धाम के दखुन जीवन डरले /तुम चो होयदे हार। /सुना खेतियार हो।

लाला जी के छत्तीसगढ़ी गीत की लय तान देंखे –

मनखे कहूं बंधागे हे /मन के मया नंदागे हे।
काला कहिबे भइया गा /काखर कोन सुनइया गा।
लूसे लेथंय बैरी मन /मरगे गांव गंवइया गा।
अब्बड़ जीवन निटागे हे /मनखे कहूं बंधागे हे।
फूटिस करस कमइया के /जागिस भाग ठगइया के।
दुश्मन ला टार वं सगी /आंटय लहू पिवइया के।
चन्दा फेर लुकागे हे /मनखे कहूं बंधागे हे।

लाला जगदलपुरी के भीतर बाहर बस्तर की माटी की महक थी। उन्हें अनेक अवसर मिले जिन का लाभ उठाकर वह बस्तर छोड़कर बाहर जा सकते थे लेकिन उन्होंने सारे अवसर छोड़ दिए। जिस चिराग़ की रोशनी में उन्होंने साहित्य रचा उसे जलाए रखा और उसी के प्रकाश में साहित्य को संवारा, दुलारा। बस्तर की मिट्टी से उन के साहित्य रूपी पेड़ की जड़ें खाद–पानी लेती थीं। यहां के आदिम जन–जीवन नें उन्हें आत्म मुग्धि की सीमा तक प्रभावित किया।

यहां नदी नाले/झरने सब आदिम जन के सहगामी हैं
यहां जिन्दगी बीहड़ वन में/पगडंडी सी चली जा रही

यहां मनुजता वैदेही सी/वनवासिन है/वनस्थली में
आदिम संस्कृति शकुन्तलासी/प्यार लुटा कर दर्द गा रहीं।
चइत परब, लेजा के/स्वर पिघलाती हैं पहाड़ियां
तन पत्थर, मन मोमी बस्तर/सरस यहां जन विजन–झाड़ियां

और लाला जी इस मोम से नर्म, निर्मल, निश्चल बस्तर के सजग सरल प्रवक्ता थे, सच्चे सरस्वती उपासक थे।

पूरी तरह से पुस्तकों, पत्रिकाओं, ग्रंथों से पटा हुआ उनका कमरा, जिसमें उम्र के आखिरी दिनो तक आगुंतुकों, लेखकों, कवियों का उन्होंने स्वागत किया। हर छोटे–बड़े से प्रसन्न होकर मिले। मेरी उनसे आख़री दिनों तक मुलाकात होती रही। वह मुझे देखते ही गले लगा लेते और कहते–परवेज, तुम्हें देखकर, मिलकर मुझे आत्मसुख मिलता है, बातें करके मन को शांति मिलती है, मैं चल फिर नहीं सकता, बस यूं ही आ जाया करो। जीवन रूपी चिराग़ की लौ मध्यम हो चली है, बुलावा आने को है, स्वागत करना अनिवार्य है। वह क्षण आ भी गया, लालाजी चले भी गये।

ऐसे बस्तर पुत्र, कर्म योद्धा तपस्वी को शत–शत प्रणाम।

एक आफ़ताब बुझा रास्ते में शाम हुई/सुकून मिल गया अब जुस्तुजू तमाम हुई।

संस्मरण–वसंत वि. चव्हाण

परम आदरणीय स्व. लाला जगदलपुरी जी जिनका वास्तविक नाम लालाराम श्रीवास्तव है जगदलपुर के डोकरीघाट पारा में निवास करते थे। उनसे मेरा मनमिलिय तथा साहित्यिक संबंध वर्ष 1975 में श्री बंशीलाल विश्वकर्मा, अध्यक्ष 'बस्तर तरूण साहित्य समिति', वर्तमान 'आकृति कला एवं साहित्य संस्था', मेरे छात्रजीवन के साथी स्व. भानुप्रताप श्रीवास्तव (रायगढ) जगदलपुर एवं श्री हुकुमदास अचिंत्य जी कवि, गीतकार के माध्यम से हुआ।

श्रद्धेय लालाजी को हम सभी आदरपूर्वक लालाजी ही संबोधित करते थे और वे हर एक से बड़े ही प्रेमपूर्वक हिलमिल जाते थे। उनकी प्रतिदिन की दिनचर्या सुबह 9 बजे से 12 बजे तक तथा शाम 5 बजे से रात 8 बजे तक नगर भ्रमण करते हुये, साहित्य प्रेमी मित्र मंडली से भेंट मुलाकात करते व्यतित हो जाती थी। वे 'आकृति' के संरक्षक थे इसलिए आना–जाना एवं साहित्यिक गोष्टि, चर्चा हुआ करती थी। उस समय मुझे हमेशा कहा करते थे कि आप भी कुछ अपने विचार भावों को लिखा करो। उनके सामने मौन रहकर कुछ लिखने का प्रयास किया। आज उन्हीं के आशीर्वाद से कुछ लिखने में अल्पस्वरूप प्रयासरत हूँ।

लालाजी स्वयं एक व्यक्ति नहीं एक संस्था थे। जिनकी ख्याति न केवल बस्तर अंचल में थी, वे अखिल भारतीय स्तर के सम्मानित साहित्यकार थे। उन्होंने बस्तर की आदिवासी संस्कृति के इतिहास का गहन अध्ययन किया था। उन्होंने गीत, गज़ल, क्षणिकाओं आदि के अतिरिक्त 'बाल साहित्य' पर भी कार्य किया था। उनके शोधपूर्ण ग्रंथ साहित्य जगत की अमूल्य धरोहर है।

कुर्ता, धोती, जवाहर जैकेट पहने हुए हाथ में छाता पकड़े कितने किलोमीटर भ्रमण कर जाते थे। आभापूर्ण दमकता चेहरा, हृदय में कोमलता, बुलंद आवाज ही उनके व्यक्तित्व का परिचय रहा।

उन्होनें अपना सारा जीवन साहित्य साधना में ही व्यतित किया। रचना उनकी जीवन संगीनी रहीं। ऐसे साहित्यिक तपस्वी को पाकर संपूर्ण बस्तर अंचल धन्य है। उनकी साहित्यिक कृतियॉ संपूर्ण साहित्यिक जगत को आलोकित करती रहेंगी। ऐसे साहित्यिक मनिषी को मेरी श्रद्धांजली, पुष्पांजली इन पंक्तियों के साथ समर्पित है–

बस्तर की माटी का गौरव
दीपशिखा है निर्भय जलना
घोर तिमिर में दिनकर बढ़ता
शैलशिखर पर अविचल बढ़ता
जनमानस का अटल तपस्वी
सुख–दुख में रहकर अविचल
श्रद्धा के दो सुमन समर्पित/ऑखों में भर अश्रुजल।।

वसंत वि. चव्हाण
ठाकुर रोड़
जगदलपुर जिला–बस्तर
छ.ग.
फोन–09752992194

सृजन की अदम्य आकांक्षा के कवि लाला जगदलपुरी

साभार–'लालाजी समग्र'

आपने कभी किसी मकान के रौशनदान या किसी खण्डहर में दीवार को फोड़ पीपल या बरगद के पौधे को ऊगते–बढ़ते देखा है ? बार–बार पैरों तले रौंदी गई, गर्मी में सूख गयी बंजर–सी जमीन में से उगती–हरियाती दूर्वा पर कभी आपने गौर किया है?.. प्राणवंत बीज कभी हमवार ज़मीन और अनुकूल हवा–पानी का इन्तजार नहीं करता। वह प्रतिकूल परिस्थितियों के संग–ओ–खिश्त को फोड़ कर भी पनपता है और अपनी सृजनशीलता प्रमाणित करता है। भारतीय मनीषा ने पीपल–और–बरगद और दूर्वा को सृजन की अदम्य आकांक्षा का प्रतीक यों ही नहीं माना है।

सृजन की यही अदम्य आकांक्षा लाला जगदलपुरी की सृजनशीलता की प्रेरणा है। साहित्य और संस्कृति से ही नहीं, आधुनिक सभ्यता और आवागमन के साधनों से, बरसों तक, कोसों दूर रहे बस्तर का बयाबाँ परिवेश, उसके सुदूर अंचल में बसे छोटे से गॉव–तोतर–में दीन बचपन के अभाव और विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष करते, डायन रातों के सन्नाटें और अंधेरे की लम्बी होती परछाईयों से घिरे माहौल में साहित्य और कविता की कोई कल्पना ही कैसे कर सकता है ? लाला जगदलपुरी ने उसी अकल्पनीय को वास्तविकता में तब्दील किया है। प्रचार–प्रसार में उदासीन, उपेक्षा और लगभग तिरस्कार झेलता हुआ कोई रचनाकार कैसे सिर्फ अपनी अदम्य सृजन–आकांक्षा के बल पर इतनी लम्बी और अकेली काव्य–यात्रा कर सकता है, यह भरोसा, लाला जगदलपुरी के साहित्य को देख– पढ़ कर ही किया जा सकता है। 'गीत धन्वा' के गीत और मुक्तकों में भी उसी निष्ठापूर्ण और समर्पित काव्य–यात्रा के नुकुश आसानी से देखे जा सकते हैं।

कवि स्वीकार करता है कि जब–जब भूखी बिटिया–सी पीर जाग उठती है, वह उसे गा–गा कर बहलाता है। उसकी तमन्ना सिर्फ इतनी है कि लम्बी राह कट जाए, मजे से गुनगुनाता गीत मंजिल तक पहुॅच जाये। उसकी कोशिश सिर्फ इतनी है कि नदी के कूल–सा, वह अपने हृदय में रह सके, जलधि के नीर–सा अपनी हदों में रह सके, स्वयं हर बार आपसे कुछ कह सके। इसीलिए उसने वरण किया है– राह अपनी, उसूल अपने, चाह अपनी, दुःख अपने, पीड़ाएं अपनी, और आह अपनी। चुनांचे उसका भरोसा है कि डूब गए खुद में तो देह का पता नहीं। सच भी तो है– मन है मन, कोई वस्त्र तो नहीं कि जब चाहे बदल लिया। कहना न होगा कि लालाजी ने अपने आत्म–संतोष के लिए स्वान्तः सुखाय ही इस कवि–कर्म का वरण किया। इसलिए उसका काव्य दर्शन ही यह है––सहज अनुभूतियों को, साधना के शब्द देकर, शिल्प जो गढ़ती, उसी लेखनी पर उसे भरोसा है। इतना कि जगत रूठे नहीं परवाह, पर मुझसे मेरी लेखनी न रूठे। वह तो उस सृजनधर्मी आग को कायल है जिसमें मूर्च्छित विश्वास भी चेतना सहेजता है। उसके भीतर जब दर्द की यह सृजनधर्मी आग जलती है तब वह पतझर में भी बहारों की गीत गाता है। उसके प्राण जब खून के घूँट पीते हैं, तब उसका गीत जन्म लेता है और दर्द जब बाँटे नहीं बँटता, तब वह उसे गा लेता है। वह जानता है कि बहुत से कथ्य ऐसे हैं, जिन्हें वाणी नहीं मिली, बहुत से दर्द ऐसे हैं, जिन्हें ईश्वर नहीं मिला। कवि ने ऐसे ही कथ्यों को वाणी दी है और ऐसे ही दर्द को सृजन का स्वर दिया है। इसीलिए पिरो लिए जो शब्द वो उसकी कलम के मोती हैं। उसका विश्वास––जो हृदय को छू न ले, वह आवाज़ क्या है ?

अपने युग के काव्य संस्कारों और उम्र के अनिवार्य स्थितिगत सच्चाई के तहत उसमें भी रूमान के भाव जागते हैं। प्रेम की इतनी मीठी कसक उसमें है कि नयन भी हृदय से इतनी दूर हो जाते हैं कि स्वप्न में भी वह प्रिय को बुला नहीं पाता। वह प्रेमिका को उलाहना देता है जिसने उसके मन के दर्द को चुरा लिया है और जो उसे बहलाने के लिए बहार तक ले आई है। इस प्रेम की सान्द्र प्रगाढ़ता इतनी है कि नयन ही मन की अनकही बात तक कह जाते हैं और यादों के देवता याद में पैबस्त रहे आते हैं। लेकिन.....बकौल फ़ैज़ 'और भी दुःख हैं, ज़माने में मुहब्बत के सिवा'..... सो बहुत जल्द ही कवि जीवन–यथार्थ के अनुभव–संसार का साक्षात्कार करता है।

यहाँ मनु के बेटे अंतस् में अँधियार बिठाए हैं और यहाँ आदमी स्वयं से लड़ कर पराजित हो गया है। व्यष्टि से समष्टि तक यहाँ जाले–ही–जाले हैं। आँसुओं को भी आँसुओं का ग़म नहीं है। यहाँ तो अनावरण हो रहा है–सत्य की मौन मूर्तियों का, पर असत्य के अनावरण का साहस कोई नहीं करता। यहाँ करनी कितनी दुबली–पतली है लेकिन कथनी कितनी तगड़ी है। संवेदनशीलता यहाँ बहरी है, और चिन्तनधारा चिन्ता के घर ठहर गई है। यहाँ तो फन काढ़े, सर्वस्व समेटे, निश्शंक अँधेरा है और आशंका है कि जाने कब ले बैठे निजी सुरक्षा का पहरा! गरीबी–भुखमरी हावी कहीं है तो कहीं जनशक्ति को तूफान ले बैठा है। यहाँ घोंसला–सा अनित्य तन हैं; इसलिए जब कभी आत्मविश्वास दिवंगत हो जाता है, तब हृदयवती आशा विधावा हो जाती है। कवि देख रहा है कि हथकण्डे जाग रहे हैं और विवेक सो गया है। पौरूष पंगु हो गया है और वाणी मुखर हो गई है। मन गुलामी कर रहा है, बुद्धि रानी हो गई है। तृप्ति संग्रह के लिए मोहताज है; त्याग चुप है, स्वार्थ में आवाज़

है। सत्य ने उसकी प्रशंसा नहीं की, इसलिए झूठ उस पर नाराज है। अभिलाषाओं को परियों के पंख मिल गये हैं लेकिन आशाओं को चलने तक के लिए पैर नहीं हैं। उम्र थोड़ी है, मगर चाहें बहुत हैं। इस विपर्यय के बावजूद–हो न हो संकल्प पर राहें बहुत हैं।

इस जीवन में कवि को जो पीड़ा मिली है, उसे वन मनोराज्य की राजदुलारी और हृदय राज की राजकुमारी लगती है। धरती माता की यह क्वाँरी पीड़ा उसे कछुए सी सरकती रात की तरह लगती है क्योंकि परिस्थितियों के भौंकने श्वानों के बीच सहमी हुई पीड़ा उसे बरसात की तरह भिंगोती है। उसे तो अपनों की दृष्टि में भी परायापन फैला लगता है और रिश्तों का रोज मरण होता है। जब अपनों का अपनापा डूब जाता है, तब हृदय धन की पूर्ति भी खो जाती है, उदासी गहरा जाती है और अनवरत अश्रुओं की धारा थमने का नाम नहीं लेती। उसे जीवन टूटते सितारे की तरह खो गया–लगता है और नतीजतन ज़िन्दगी उसे वेदना–ही–वेदना लगती है। .....इस सबके बावजूद कवि में एक दुर्ददमनीय आशावाद है। उसके लिए असफलताएँ भी मार्ग सुगम कर देती हैं, मजबूरियाँ नये प्रतिमान बनाती हैं, विष के घूँटों में विश्वास पनपता है और निराशाएँ भी निराश हो जाती हैं। वह खुद से कहता है––ज़िन्दगी उदास न हो हमराही, आस्था हताश न हो, वक्त तो तिमिर के भाल पर भी उजले नखत पढ़ता है, संकटों को, जीत के वरदान मानता है और जानता है कि कंटकों का सामना करते हैं जिसके चरण, उसी के शीश पर फूल चढ़ते हैं। क्षणों में इतनी शक्ति है कि सुखद युग का सृजन कर सकें और कणों में इतनी शक्ति है कि अटल पर्वत खड़ा कर दें। उसकी संघर्ष चेतना यह जातनी है कि बूँदों की अपरिमित शक्ति को ही यह श्रेय है कि वे सागर बनाती है और तृणों में भी इतनी शक्ति है कि वह यम के दम्भ तक परास्त कर सकती है।

इसीलिए कवि ने जीवन की अम्लान आस्था के प्रतीक (दीप) पर कई मुक्त कहे हैं। यहॉ आरती के दीप ऐसे जलते हैं कि ऑधियों तक की जीत नहीं हो पाती। उसने दीप को नये सिरे से परिभाषित किया हैः साधना में जो पले वही दीप है, आरती में जो जले वही दीप है, तिमिर में जो ज्योति का संदेश दे और जो अंधड़ों को भी जीत ले, वही दीप है। इस दीप से न सिर्फ रौशनी झरती है, बल्कि इससे कालिमा भी डरती है। यह न केवल सर पर आग धरे है, वरन यह रात भर सबकी भलाई भी करे है। सूर्य और चॉद की तुलना में माटी के इस दीप की महता इसलिए भी है कि सूर्य तो दिन भर चमकता है लेकिन सांझ की सौगात दे कर चला जाता है। चॉद चमकता है लेकिन काली रात दे कर बुझ जाता है जबकि दीप को हम रात का अंधेरा देते हैं लेकिन वह बुझता है तो प्रातः की रौशनी देकरः इसीलिए तम के दुर्ग को तोड़ने वाले और द्वार पर काली निशा को अपनी दिव्य ज्योति से परास्त करने वाला यह दीप कुटी मन से जोड़ता है। कहना न होगा कि दीप के इन मुक्तकों में कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के दीपक और महादेवी वर्मा की दीपशिखा के भाव–सरगम की गूंज और अनुगॅूज आसानी से सुनी जा सकती है।

जीवन की इस अम्लान आस्था के नतीजतन कवि में एक संकल्प धर्मा संघर्ष चेतना जागृत होती है और वह चुनौती के स्वर में कहता हैः हम भी देखें कितना वक्त है कठोर! आकांक्षाओं की ठठरी के बावजूद उसकी कामना है कि बंधी रहे आकांक्षाओं की गठरी। उसे बॉसुरी से अधिक प्यारा तूर्य लगता है कि इससे जीवन संघर्षो में जीवन का अभ्यास बढ़ता है। उसका मन अब रम गया है दुखों में, इसीलिए किसी भी सुख से उसकी कभी कोई सुलह नहीं होती। उसे तो अब नहीं देती सुनाई दर्द की आवाज और नहीं देता दिखाई कंटकों का ताज। निपट अंधे और बहरे पत्थरों के बीच उसकी जिन्दगी ने कर दिया जिन को नजरन्दाज। उसे तो अब कॉटों का हार पहनने की आदत–सी पड़ गई है इसलिए उसमें यह संकल्प–राग जागता हैः मोड़ दे तू ऑधियों को, अगर मन में ठान ले।... इस संकल्प धर्मा चेतना के स्वरों का उत्स माटी के वे सरोकार भी हैं जो कवि को अपने जन्म से ही मिले हैं। उसकी चेतना तो कहती है–जिसने मिट्टी ओढ़ ली, वही सृजनधर्मी मूल है। यही माटी सिर पर चढ़ कर बोलती है कि कनक–छड़ी मेरी ही थाती है। इस माटी के गीत अमर हैं, जिसमें लेजा, परब आदि शामिल हैं। माटी के इन्हीं सरोकारों की वजह से कवि का विश्वास है कि मातृ–भूमि का मान रखने के लिए, अपराजेय तत्व चुक सकते नहीं। धरती के दामन में भर दे जो हरियाली, उस नई जवानी से उसे प्रकाश की आशा है। कवि को बस्तर से इतना प्यार है कि वह उद्घोष करता है––बस्तर नहीं अब गूँगा, बोल अचानक उसके फूटे हैं। उसे महुए की बात, सिंगारिक परिधि के पहरूए की बात लगती है।

बस्तर का वन्य जीवन इन गीतों और मुक्तकों में जीवन्त हो उठा है। बस्तर के प्रसिद्ध जल–प्रपात––चीतरकोट का गर्जन–तर्जन उसे जन–आन्दोलन लगता है, तो इन्द्रावती नदी के बूँद–बूँद जल को वह अपने दृग–जल की भाँति जानता है। तेलिन घाटी उसे अपनी हर विपदा की सहचरी लगती है तो कोटमसर की गुफा, जीवन के तम का डेरा। बस्तर के रूपवान जंगल उसे धरती के बेटे और कांतर प्रकृति के हृदय–प्राण लगते है। वहाँ के झरनों में उसे जलतरंग सुनाई देता है और

वन–वन में दौड़ रहे हिरन उसे स्वर्ण–मृग नज़र आते हैं। सुरम्य पहाड़ियाँ, वन पखेरू, सघन वन–झाड़ियाँ उसे अपनी आत्मीयता सहचरी लगती हैं और सारा माहौल पंछी–सा चहक उठता है। यहाँ ज़िन्दगी धूल सनी अलसायी–सी है और वन–फूलों की गंध आवारा–सी भटकती है। यहाँ मेड़ें बाँहों–सी और धरती––छाती–सी। यहाँ जब ढोल बजते हैं तब आठों दिशाएँ गरज उठती हैं। गाँव–गाँव, कुटी–कुटी महुए की गंध फैल जाती है और माटी के गीत, चिड़ियों के छन्दों में गूँज उठते हैं। उसे तो बस्तर का आदिवासी साक्षात् बीहड़ माटी का तन ही लगता है, जिसे उसने जब भी देखा, अपने में मगन देखा। तरूण कण्ठों में गीत यहाँ छलकते हैं और पूरा बस्तर वन देवी के घर की ओर धरोहर मालूम होता है। आदिम जातीय इस वनवासी माटी में नित्य मधुमास होता है और परब की तानें रसिकों के कानों में अमृत–धार ढारती हैं।

विकास के नाम पर बस्तर की आदिम जनजातीय संस्कृति और वन्य जीवन का नाश करने वाली तथाकथित आधुनिक प्रगति पर इस माटी–पुत्र कवि की चिन्ता स्वाभाविक है। वह पूछता है–कहो, कहाँ चले रामधन! प्रगति का कहीं पता नहीं चला। वह दुखी मन से व्यंग्योक्ति करता है––काट रहे जंगल, कल्याण हो गया, मर रहा वनांचल कल्याण हो गया। वह सजग करता हुआ कहता है––नाम तरक्की का ले–ले कर सिर पर मँडराता खतरा, हो जा बन्धु सतक जरा। विकास के नाम पर यहाँ जंगल के डैनों के पंख बिक गए, उधर माँदों के बाघ, बन गए बाघम्बर और पाँवों ने पहन लिए चीतर–साम्हर। वह देख रहा है––दुखद कुछ ऐसा बदलाव, छाँव भी अब लगती नहीं है छाँव। विडम्बना तो यही है कि बढ़े इतना, कि पीछे छूट गए, खा गए प्राण, रक्त घूँट पी गए। फिर भी कागज के नीचे उतरा नहीं कुँआ। क्या यह विकास की प्रवंचना नहीं है कि विकल हैं मछलियाँ, रक्षक है मछेरा। यहाँ तो वंचनाएँ मिल कर प्रभात करती हैं, इसलिए स्वस्थ आकांक्षाएँ आत्मघात करती हैं। कोई यह न समझे कि कवि प्रगति–या–विकास का विरोधी है––वह तो कामना करता– प्रगति हो, विद्रूपताओं से परे।

विकास की विसंगतियों और विद्रूपताओं के मद्देनजर कवि की व्यंग्य चेतना प्रखर होती है। हरशिंकर परसाईं के 'भोला राम का जीव' की तरह यहाँ रामधन का जीव है तो प्रभुता के तहखानों में फाइलों के अन्दर दबा हुआ है। आम आदिवासी की ज़िन्दगी जोर जुल्म सहन करती है और विकास या प्रगति का कहीं पता नहीं चलता। यहाँ तो लहकती हुई प्रभुता, जीभ लपलपाती है और दरकते कगारों–सी ज़िन्दगी किनारों पर खड़ी हाथ मलती है। वह देख रहा है–फन काढ़े, सर्वस्व समेटे, बैठा है निश्शंक अँधेरा। यहाँ करनी के सिर विष सागर है और भाग्यवान हैं शोर–शराबे। वह ढँके–मुँदे जीवन की सत्य कथा बाँचने का आग्रह करता है। यहाँ तो मोटी चमड़ी जिसकी, खास वह फरिश्ता है। उत्पीड़ित के साहस का हर कदम यहाँ बगावत कहलाता है। कंचन को यह गर्व कि उस पर निर्भर है सुन्दरता। आज तो, शेर बबर भी बन गए हैं खिलौने सरकस के। यहाँ तो सज्जनता छोरी को सुना रही लोरी दुर्जनता गोरी और पहरे में जाग रहे हैं आदमखोर। सितम यह है कि जाग रहे हथकण्डे, सो रहा विवेक। राजनीति का हाल यह है सिर्फ रैलियाँ हैं, नारे हैं, वक्तव्यों की चटखारें हैं, कथनी तक है देश का नाम, उनको अपने दल प्यारे हैं। अवसरवादी की यह शिनाख़्त कितनी अचूक है : न हाय–हाय, राम–राम, करो प्रकाश की धुन पर काम करो, पुनरोदय उसका निश्चित है, डूबते सूरज को प्रणाम करो। और 'कमल' पर इस व्यंग्य का भी ज़रा मुलाहिजा हो : कृपा कीचड़ की, कमल उपजा मगर, कमल बोला एक दिन, सुर रे भ्रमर, पंख अपने धो आ जा, लगी कीचड़ तेरे, देख मेरी पाँखुरी गंदी न कर। और हमारा नेतृत्व कैसा है : चमकते थे जो सितारे अँधेरे में, अचानक छिप गए हमको सुबह देकर, मगर उस त्याग की उपलब्धि की छवि को चला नेतृत्व संध्या की तरफ लेकर। आधुनिक सभ्यता पर यह व्यंग्य देखिए : द्रुमों के पत्र, छाया के लिए थे, किन्तु वन्दनवार मिले। और चमन के फूल जो अर्पण के लिए थे, गुलदस्तों में सजे मिले। यहाँ तो सफल हैं वो लोग जो समाज के रोग रहे हैं। शायद इसीलिए नई सभ्यता नचा रही पिछड़ेपन को।

कविवर केदारनाथ अग्रवाल की एक कविता है : हम न रहेंगे, तब भी तो ये खेत रहेंगे। लालाजी भी कहते हैं : चलने दो बन्धु, कलम का हल चलने दो। वो गीतों की फसल खड़ी करना चाहते हैं ताकि आगामी कल लहलहा उठे। प्रेमचन्द को कलम का सिपाही कहा जाता है, लालाजी हैं––कलम के खेतिहर मजदूर। उनका समय यों कटा ज्यों ऋणी हलधर की फसल। इठलाती, बलखाती धान की फसल से उनका मन मयूर नाच उठता है। धान की बालियों को जब पवन छू कर गुजरता है तो उन्हें वह पायल झनकाती लगती है। झुक–झुक कर झूमती हसीन बालियों वाली धान की फसल को वह माटी की देन कहते हैं। फसल उन्हें कभी चिड़ियों–सी चहकती लगती है, तो कभी डोलती सी धान की फसल, गुमसुम कुछ बोलती सी लगती है। फसलों से गुपचुप बतियाता यह कवि फसल की सार्थकता का यों, साक्षात्कार करता है : पाकर हँसियों की धार कट गईं फसलें, कटीं–बिछीं तमाम और हट गईं फसलें। फसलों का यारो, यही हश्र होता है, रौंदी और मसली गईं, बँट गईं फसलें। .....फसल और श्रम में कार्य–कारण का सम्बन्ध है। इसीलिए कवि कहता है : जीवन में पग–पग पर भूजबल और श्रमजल का महत्व है। वह जानता है कि व्यर्थ गरज पड़ने से काम नहीं चलता, जो केवल बरसे उसी बादल का महत्व है।

उसका विश्वास है कि सभी संभावनाएँ तोड़ देंगी दम, अरे निष्ठुर, उन्हें आँसू नहीं केवल पसीने की ज़रूरत है। उनके लिए यह पसीना स्वाभिमानी है, महादानी है, रमता जोगी, बहता पानी है, सुनाते–सुनाते इस ज़िन्दगी को नींद आ जाती, पसीने की बड़ी लम्बी कहानी है।

अपनी पीढ़ी के काव्य संस्कारों के तहत लालाजी में भी देशानुराग और राष्ट्रीय चेतना के स्वर मुखर है। उनमें कहीं शहीदों के रूधिर की राष्ट्रवाणी जागती है तो कहीं मनुजता के प्रति भक्ति–भाव गर्व में गूँजता है। कवि को यह अभिमान है कि यहाँ बहुत से ऐसे वीर थे जिनकी काँख में दशकंठ तक कैद था। वीरों का आह्वान करता हुआ वह उन्हें राष्ट्रधर्म और भक्ति के कर्तव्य पालन के लिए प्रेरित करता है। गाँवों में रहने वाले अपने हिन्दुस्तान पर जहाँ उसे गर्व है वहीं वह भारतीय स्वतंत्रता के सव्यसाचियों को प्रणाम करता है। अपने बाद आने वाली पीढ़ी के प्रति उसमें वात्सल्य–भाव है। गर्व के साथ अंधकार को पियो बेटो, ओ लाड़लो! न रोओ वक्त है नाराज, या बच्ची नई धरती नया आकाश देने का इरादा था कह कर वह अपनी पीढ़ी की स्थितिगत विवशता को स्वीकार करता है तो युवा शक्ति को वह प्रेरक उद्‌बोधन भी देता है––झंझावातों में पले युवा पीढ़ी, सैकत में फूले–फले युवा पीढ़ी, शाश्वत प्रतिभा–सी जले युवा पीढ़ी।

'हृदय की मौन पीड़ा का स्वयंवर है' के धनुष–भंग, जानकी और अगति के मत्स्य वेध के संकेतों में जहाँ मिथकीय चेतना का संस्पर्श है वहीं भरत के भ्रात–भाव और उनके त्याग के गायन में पौराणिकता की अभिव्यक्ति है। अपनी काव्य संस्कृति का स्मरण करता हुआ कवि तुलसीदास को काव्यांजलि समर्पित करता है। तुलसी से सम्बद्ध इन मुक्तकों में नारी की महिमा, रत्नावली के अवदान, तुलसी की साधना और उनकी कालजयी लेखनी को नमन किया गया है। ईसा मसीह अैर सुकरात की परम्परा में गाँधी को भी श्रद्धा सुमन अर्पित किए गए हैं।

इन गीतों और मुक्तकों की प्रकृति–खास तौर पर बरसात–के चित्र भी आकर्षक है। बस्तर में लगातार कई दिनों तक मूसलाधार बारिश का नजारा जिन लोगों ने देखा है वे इन चित्रों के सौन्दर्य पर अवश्य मुग्ध होंगे। वे सुरम्य पहाड़ियाँ, वह वन्यजीवन, वे सपनीली रातें और शबनमी सबेरे, नील नभ पर सुधाकुण्ड–सा चाँद और चमचमाती सुधाधार चाँदनी, सर्दी की वनवासिन रातें, दहकती दोपहरी, महक रहे बौर, ढीठ आसमान मार रहा अगिन बान, मेघों की डाँट–डपट बिजली का कोड़ा, धरती पर ढरकता मेघों का प्यार, आसमान पर गरज–घुमड़ कर घूमते आवारा बादल के अलावा दूध से नहा रही रात, सिर झुका तम का, काले–काले बादलों ने ढँक लिया आकाश को और काली घटा काजल–सी, छितराये कुन्तल–सी आदि प्रकृति चित्र बस्तर की छवि को मूर्तिमान कर देते हैं। .....लालाजी बस्तर की इस भूमि को नमन करते हैं : जन्मदात्री, खूब था जीवन तुम्हारा, खूब तुमने ही संघर्ष झेले। इस भाव सरगम में वे अपनी माँ का भी स्मरण करते हैं : माँ बिना भगवान सूने, पेट भूखा हाथ ऊँचा, कटि झुकी पर माथ ऊँचा, घुटती रहती थीं तुम तिल–तिल, कभी मटियाई, कभी गोबर सने, कमेलिन माँ के व्यस्त हाथों की याद करता हुआ कवि माँ को प्रेरणा के एक अमृत स्त्रोत की तरह प्रतिष्ठित करता है और यों उनकी माँ, सबकी माँ हो जाती है। कवि का बिम्ब–विधान उसकी समृद्ध कल्पना शक्ति का परिचय देता है। कल्पना है ही बिम्ब–विधायिनी शक्ति। कवि के भाव और मानस बिम्बों को यथावत् सम्प्रेषित करने की दृष्टि से बिम्ब–विधान, कवि–कर्म का केन्द्रीय सरोकार है। लालाजी के इन गीतों और मुक्तकों के कुछ बिम्बों का अवलोकन करें : किरनों के झटके से टूट गई/निद्रा की डोर/चुरा कर परात के रतन/चला गया काला चोर।–सूर्य की नाव डगमगाती है/सांझ आँखों में कुमकुमाती है/सुधियों में उभर रहा/मदिर–मदिर गाँव/खनक रहे हाथ और झनक रहे पाँव/गूँज रही बाँसुरिया/महक रहे बौर।–चूल्हा कब जले और/कब चढ़े पतीली/बार–बार बुझती है/माचिस की तीली/लकड़ी ने व्यथा कहीं धुँए की जबानी।–काले तख्ते पर ज्यों सुनहरी लकीर/खींचता–मिटाता हो एक होनहार/ढरक रहा धरती पर मेघों का प्यार।–इस बिम्ब से शमशेर बहादुर सिंह की 'उषा' का यह बिम्ब अनायास कौंध जाता है : बहुत काली सिल, ज़रा से लाल केसर से कि जैसे धुल गयी हो।

प्लेट पर आसमान की जैसे/एक रोटी परिश्रम की।

इस बिम्ब की सुकांत भट्‌टाचार्य के इस बिम्ब–'पूर्णिमा चाँद, जन झल सानो रूटि'–का याद आना भी उतना ही स्वाभाविक है। और जापानी 'हाइकू' की याद दिलाते हुए इन 'तीर–ए–नीमकश' का भी मुलाहिजा हो :

बादल ज्यों घोड़ा/बिजली ज्यों कोड़ा/पवन घुड़सवारी/कर रहा निगोड़ा।

व्योम के तले/हँसुए संभले/खून न हो पर/कट गये गले।

आप इन गीतों और मुक्तकों को पढ़िए। मैं आस्वश्त हूँ कि आपका रंजन अवश्य होगा। मैंने तो इन्हें पढ़ने के दौरान सिर्फ अपने रेखांकन ही यहाँ प्रस्तुत किए हैं।

डॉ. धनंजय वर्मा
24 फरवरी 2011
द्वारा– डॉ. निवेदिता वर्मा
एफ–2/31,
आवासीय परिसर
विक्रम विश्वविद्यालय
उज्जैन 456010

लाला जगदलपुरी के अभिन्न मित्र बी.एल.विश्वकर्मा से बातचीत

अब और क्या लिखूं!

लाला जगदलपुरी और बंशीलाल विश्वकर्मा जी की जुगलजोड़ी जो बस्तर के कला एवं साहित्य के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में दर्ज है इन्होंने अपने–अपने क्षेत्र में जो मूलभूत कार्य किये हैं वे इस क्षेत्र की धरोहर हैं। वर्तमान में जितना कुछ भी कला एवं साहित्य के परिदृश्य में दिखाई पड़ रहा है वो सारा कुछ इन दो महानुभाओं का किया धरा है। इन दोनों की जलाई अलख ने वर्तमान को रोशनी से तर–बतर कर दिया है। बचपन से अभिन्न मित्र रहे दोनों ने निस्वार्थ भाव से कला को वो ऊंचाईयां दी है जो कि अविश्वसनीय हैं। न जाने कितने ही साहित्यकारों का कार्य लालाजी की प्रेरणा से प्रभावित हुआ और उन साहित्यकारों ने अपना नाम पूरे देश में रोशन किया। उनकी साहित्य साधना कबीर की तरह थी जो कि आम जन के लिए ही रची गयी। वे कबीर की ही तरह फक्कड़ मिज़ाजी थे साथ साहित्य के धुनी भी। उन्होंने जो काम साहित्य, लोक साहित्य, लोकबोली, लोक संस्कृति के लिए किया वह कईयों के जीवन के लिए प्रकाश स्तंभ बन गया। उनके रचे साहित्य से उन लोगों ने नाम कमा लिया और लालाजी एक योगी की तरह शांतचित्त से अपने कर्म में लगे रहे। गीता के वाक्य 'कर्म किये जा फल की चिन्ता मत कर।' को अपने जीवन का आधार बनाया और अपने रचे साहित्य को जीवन में उतारा। वर्तमान के 'थोथा चना बाजे घणा' को दूर से ही राम–राम कर दिया। आज के दौर में चलने वाली तकनीक, जिससे दो साहित्यकार एक दूसरे को स्थापित करने में लगे होते हैं उनसे कोसों दूर कुछ ऐसा रचा कि आज की दुनिया अचंभित है और उनके मूल्यांकन को आतुर है। समय पे मूल्यांकन न कर पाने की गलती का अहसास है। आईये हम कला के हिमालय से साहित्य के हिमालय के संबंध में कुछ और जानने का प्रयास करें जो अब तक राज ही रहा। ये जानने का प्रयास कर रहे हैं भरत कुमार गंगादित्य, जिन पर लालाजी का आशीर्वाद बना रहा।

भरत–दादाजी (बंशीलाल विश्वकर्मा) आपके लालाजी के साथ संबंध थे ये तो हम सभी भली भांति जानते हैं पर वे संबंध ा कैसे थे ? किस तरह से आप एक दूसरे से जुड़े हुए थे ? जरा विस्तार से बताएं।

बंशीलाल विश्वकर्मा जी–मैं और लालाजी बचपन के ही मित्र थे। हम दोनों ने अपना बचपन लगभग साथ ही गुजारा था क्योंकि जगदलपुर छोटी बस्ती थी और मेरा उनके मुहल्ले में और उनके घर की ओर आना–जाना लगा रहता था। उनके घर में हमेशा मैं पहुंच जाता था।। उनकी माताजी भी मुझे चाहती थीं। एक तरह से घरोबा था हमारे संबंधों में। बचपन की खेलकूद के बाद हम दोनों धीरे से कला और साहित्य से जुड़ गये। हमारी दोस्ती अब चर्चाओं में बीतने लगी। मैं भले ही साहित्य से सीधे तौर पर नहीं जुड़ा था परन्तु एक कलाकार हूं इसलिए मन से जुड़ा था। मेरे चित्रकार होने से लालाजी प्रभावित थे, वे साहित्यकार थे इसलिए मैं उनसे प्रभावित था। इस प्रकार हमारे बीच लगाव था।

भरत–उन्होंने साहित्य सृजन कब से शुरू किया और उनके लेखन का झुकाव किस ओर था, मसलन प्रेमगीत अथवा कहानी या फिर और कुछ ?

बंशीलाल विश्वकर्मा– मेरा उनका जब से परिचय हुआ तब से ही मैंने उन्हें सृजनरत ही देखा। वे लेखन के प्रति बेहद अनुरागी थे। दुनिया के तमाम जरूरी कामों की जगह वे लेखन को ही तरजीह दिया करते थे। इस कारण उनके घर–परिवार में भी खटपट होती तो वे उसकी चिन्ता नहीं करते थे। अगर मैं एक लाइन में कहना चाहूं तो यही कहूंगा कि वे लेखन के लिए ही इस दुनिया में आये थे और उन्होंने अपने रचनाकार, सृजनकर्ता का स्वप्न पूरा किया। उन्होंने सबकुछ रचा है परन्तु उनके भीतर की संवेदनशीलता हमेशा उन्हें इस क्षेत्र के आदिम जीवन की ओर खींच लेती थी इस कारण वे अपने आप को उनके बीच पाते थे। उन्होंने साहित्य संबंधी जो भी कार्य किया उसमें से बहुत कुछ बस्तर के संदर्भ में ही किया।

यहां की भाषा–बोली को लेकर उन्होंने बहुत कुछ संकलित किया। उनके पूर्व अन्य किसी ने ऐसा काम नहीं किया था, ऐसा मेरा मानना है। स्थानीय हल्बी–भतरी और गोंडी बोली के मुहावरे, व्याकरण, शब्दकोष तैयार किया। इन बोलियों में प्रचलित लोकगीत, कहानियों का संकलन किया। उन्होंने स्वयं भी अनेक लोकगीतों की रचना भी की। उनके द्वारा किये गये कार्य ही मूलभूत कार्य हैं जिनके आधार पर ही वर्तमान में अनेक शोधार्थी और भाषाविद् अपना शोध कार्य आगे बढ़ा रहे हैं। उन्होंने मुंशी प्रेमचंद की कहानियों का हल्बी में अनुवाद किया। हल्बी में भजन भी लिखे।

हिन्दी गीत–ग़ज़लों का तो जखीरा था उनके पास। उनका विशेषरूप से चर्चित 'मिमयाती जिन्दगी दहाड़ते परिवेश' ग़ज़ल–संग्रह है। मैंने अपने जीवन एकमात्र ऐसा व्यक्ति देखा जो रातदिन केवल और केवल साहित्य के लिए जीता था। साहित्य उनके लिए सांस की तरह था। वे हमेशा होने वाली गोष्ठियों में अपनी नई रचना ही सुनाना पसंद करते थे। आज मैं देखता हूं कि कुछ कवि तो दो–चार रचनाएं ही सुनाते रहते हैं। वे वर्तमान दौर की सोच से कहीं आगे थे। वे रचनाओं के माध्यम से क्रांति की अपेक्षा रखते थे।

भरत–लालाजी के समय कौन–कौन साहित्यकार गोष्ठियों में सम्मिलित होते थे ? क्या कभी उन्होंने कोई बड़ा कार्यक्रम किया था ?

बंशीलाल विश्वकर्मा–उस दौर के लगभग सभी साहित्य से जुड़े लोगों ने लालाजी का साथ पाया था। गंगाधर सांमत, , लख्मीचंद जैन, रघनाथ महापात्र, रऊफ परवेज़, लक्ष्मीनारायण पयोधि आदि। बस्तर का साहित्यिक इतिहास बड़ा ही सम्पन्न था। अपने यहां कई बड़े नामचीन साहित्यकार किसी न किसी कारण रह चुके थे जैसे–धनंजय वर्मा, नेमीचंद जैन आदि। शानी और उनका आपस का प्रेम तो जगदलपुर में शानी के सम्मान में दिखा था, जब शानी का सम्मान किया गया तो वे स्वागत हार लेकर लालाजी के गले में पहना दिये और दोनों गले लगकर अपनी और उपस्थित दर्शको की आंखें भीगो दिये।

उनके द्वारा बड़े कार्यक्रम का विरोध किया गया था। तरूण साहित्य समिति के माध्यम से एक बार अखिल भारतीय कविता एवं शायरी सम्मेलन का आयोजन किया गया। उस वक्त रऊफ परवेज़ साहब आयोजन कमेटी के अध्यक्ष थे। लालाजी एकदम से इस आयोजन के विरोध में आ गये और बोले इतने बड़े और नामचीन कवियों को बुलायेंगे, इस छोटी बस्ती में कैसे व्यवस्था होगी ? उनका हमारी अव्यवस्था से अपमान हो सकता है। ऐसे में हमें शर्मिन्दा होना पड़ सकता है।

यह कहकर कार्यक्रम की आयोजन समिति से नहीं जुड़े और कार्यक्रम में भी भाग नहीं लिया। वह कार्यक्रम बहुत सफल कार्यक्रम था। उस जमाने की उपलब्ध अल्प व्यवस्थाओं में भी जैसा कार्यक्रम सम्पन्न हुआ वैसा तो आज तक देखने को नहीं मिला।

वैसे लालाजी साहित्यिक गोष्ठियों मे लगातार सम्मिलित होत थे और वे लगातार होने वाली इन गोष्ठियों को साहित्य की जड़ मजबूत करने वाला मानते थे। उनके कथन में सच्चाई थी और है, तभी तो उस दौर की 'उद्‌गम साहित्य समिति', 'तरूण साहित्य समिति' और वर्तमान में 'आकृति' संस्था के लगातार प्रयासों से इस पिछड़े माने जाने वाले क्षेत्र में भी साहित्य की मशाल लगातार जल रही है। इन समितियों के माध्यम से न जाने कितने ही लोग साहित्य से जुड़े उनकी ठीक जानकारी नहीं है क्योंकि कई तो गोष्ठियों में अपनी उपस्थिति दर्शाते थे और कई यूं ही मिलजुलकर चले जाते थे।

भरत– लालाजी अपनी रचनाओं के प्रकाशन के संबंध में क्या सोचते थे ?

बंशीलाल विश्वकर्मा–इस मामले में वे बड़े ही संकोची थे। वर्तमान समय में देखता हूं तो सोचता हूं कि कुछ कवि ऐसे हैं जो खुद को आगे करने में न जाने किस–किस की कविताओं को, कहानियों को अपने नाम से छपवाकर आगे बने रहते हैं और एक लालाजी थे जो अपनी रचनाओं के प्रकाशन के संबंध में क्या कहते थे गौर फरमाईये–लिखता तो बहुत हूं। ढेरों रचनाएं पड़ी हैं घर में, जिन्हें कोई पूछने वाला ही नहीं है। अब और क्या लिखूं ?

इसके बाद मैंने कहा आप बस्तर के संदर्भ लिखिए हम 'आकृति' संस्था के माध्यम से प्रकाशित करेंगे आपकी पुस्तक। तब जाकर उन्होंने 'बस्तर का लोकसाहित्य' लिखा और हमने आकृति के माध्यम से प्रकाशित कर विमोचन करवाया। उनका मुख्य ग्रंथ था 'बस्तर : लोककला एवं संस्कृति'।

भरत– लालाजी को आज वह सम्मान नहीं मिल पाया जो कि बहुत से छोटे–मोटे रचनाकारों को मिल गया। ऐसे में आप क्या सोचते हैं उनके लिए ?

बंशीलाल विश्वकर्मा–यह इस क्षेत्र की विसंगति है कि यहां के ख्यातिनाम कलाकारों और साहित्यकारों का मात्र उपयोग किया जाता है, उनकी कृतियों की चोरी और बदलाव के बाद अपने नाम से वाहवाही लूटी जाती है। साहित्यकार बेचारा चुपचाप अपने ही आगे अपनी कृतियों का ऐसा होना देखता रह जाता है। लालाजी भी इस नीति के शिकार हैं उनके द्वारा रचित साहित्य नष्ट हो रहा है, चोरी हो रहा है। बचे हुए साहित्य का संरक्षण किया जाना चाहिए। लालाजी की एक प्रतिमा इस शहर में लगानी चाहिए जिससे उनका सम्मान इस क्षेत्र में बना रहे, उनका साहित्यिक योगदान लोग न भूल पायें। कम से कम उनके नाम से शहर की एक सड़क का नामकरण होना चाहिए। मैं खुद भी चाहता हूं कि हम कलाकारों एवं साहित्यकारों के सहयोग से उनके नाम पर एक सम्मान भी शुरू कर सकें तो अच्छा हो। खैर लालाजी हमारे बीच हैं और रहेंगे।

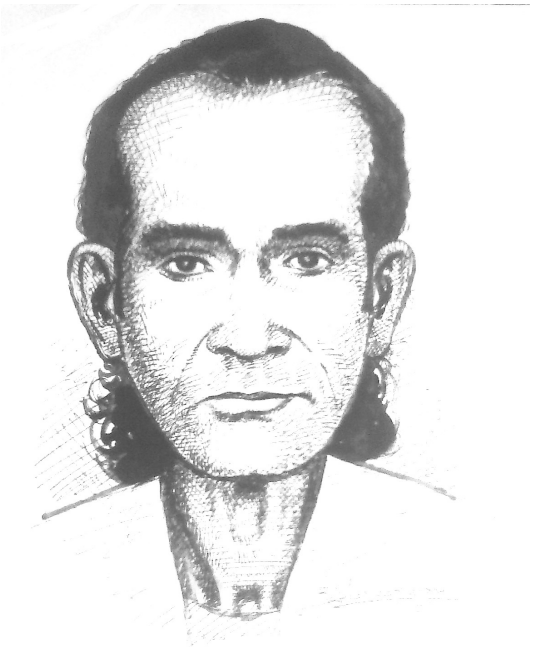

बंशीलाल विश्वकर्मा जी द्वारा बनाया गया लालाजी का चित्र

संस्मरण–श्रीमती किरणलता वैद्य

लालाजी.....जैसा मैंने उन्हें जाना

विद्युत विभाग में नौकरी के चलते हम लगभग 18 वर्ष जगदलपुर में रहे। जगदलपुर आकाशवाणी की नियमित श्रोता, आकस्मिक कलाकार और कम्पीयर होने के कारण लालाजी मिले मुझे। बाद में उन्हें करीब से जाना और उनका स्नेह पाया। यदि उनकी हर मुलाकात को लिखकर रखती, तो मेरे पास उनकी बातों का एक बड़ा खजाना होता, पर मैं ऐसा न कर सकी। यादों के पृष्ठों पर जमी धुंध को हटाते हुए कुछ लिखने का प्रयास कर रही हूँ।

आकाशवाणी, जगदलपुर से प्रसारित उनके चिंतन, वार्ता, नाटक एवं रूपकों को सुनने के कई अवसर मिले। नाटक 'गुंजली', रूपक 'पत्तों की पात्रता', बस्तर के अनूठे वाद्ययंत्र, जगतू गुड़ा से जगदलपुर, लोकोक्तियों में झलकता बस्तर, विध ात्री रक्तदंता आदि–आदि बार–बार प्रसारित होते रहे।

उनसे मिलने की इच्छा हुई। मैं अपने पति के साथ उनके घर पहुंची डोकरीघाट पारा स्थित कवि–निवास में। वे अपने छोटे भाई के परिवार के साथ रहते थे। दुबली–पतली काया, मध्यम कद, पीछे गर्दन तक लम्बे बाल, चौड़ी भौहें, बड़ी–बड़ी आँखें, लटकी हुई ठुड्डी, झुर्रियों से भरा चेहरा, चेहरे पर ब्रह्मचर्य का तेज और आवाज़ में युवाओं सा ओज। सफेद धोती, सफेद कुर्ता और कंधे पर गमछा डाले नगर–परिक्रमा करते उन्हें कई बार देखा था। उनके चरम–स्पर्श कर हम धन्य हुए। कुर्सियों पर रखे कुछ कागज और छोटे–छोटे सामानों को हटाकर हमें सादर बिठाया। हमारा परिचय लिया और अपने जीवन के खट्टे–मीठे अनुभव सुनाने लगे। उनकी बातें सुनते हुए हमने कमरे का अवलोकन किया। छोटा–सा कमरा, एक ओर पलंग–मच्छरदानी लगा हुआ। एक आराम कुर्सी, दो प्लास्टिक की कुर्सियाँ, एक मूढ़ा और एक स्टूल। दीवाल में बनी आलमारियों में किताबें, करीने से रखी हुईं। कुछ सम्मान–चिह्न और आलमारी के एक खाने में उनकी माताजी की एक तस्वीर थी। उनकी युवावस्था की एक तस्वीर भी जो किसी स्वतंत्रता संग्राम सेनानी से मिलती–जुलती थी। लालाजी ने हमसे चाय के लिए आग्रह किया। हमने सविनय टालते हुए सिर्फ़ पानी मांगा। कमरे के एक दरवाजे से आकर एक सम्भ्रान्त महिला ने हमें पानी दिया और कुछ बातचीत की। मैंने अनुभव किया कि यूँ तो लालाजी संयुक्त परिवार में भाई–भतीजों के साथ रहते हैं, पर उनकी दुनिया उनके कमरे तक सीमित है, जहाँ किताबों, रचनाओं और अपने साहित्यिक साथियों से बातें करते हुए ज्यादा से ज्यादा समय बिताते हैं। इसके बाद उनसे मिलने का सिलसिला शुरू हो गया। सन् 1992 में मैंने अपने पिता समान ससुरजी को खोया था। अतः उनमें मुझे अपने पिताजी ही दिखते थे। कम से कम हर पन्द्रह दिनों में एक बार उनके पास जाया करती। यदि कुछ नया लिखती, तो लगता कि कब उनके पास जाऊँ और अपनी रचना सुनाऊँ। उन्हें भी जैसे इन्तज़ार रहता था। कहते– कितने दिनों बाद आयी हो और पूछते कि क्या लायी हो ? उनका इशारा रचनाओं की ओर रहता। छोटी और हल्की रचना पर तुरन्त टिप्पणी करते। लम्बी रचना, कहानियों या अधिक संख्या में रचनाएँ होने पर कहते –छोड़ जाओ, फिर देखूंगा। अगली मुलाकात में रचनाओं पर समीक्षात्मक टिप्पणी करते, पर कभी भी सुधार या परिवर्तन के लिए अपनी मंशा नहीं जताते ताकि मौलिकता बनी रहे। उन्होंने मेरी कई कविताएँ, कहानियाँ पढ़ीं और सराहीं, कमियों की ओर इशारा भी किया। वे कहते थे – खूब पढ़ो और लिखो, लेखन–दोष नहीं हैं, प्रेरक और मार्गदर्शक हैं। उनकी नज़र में मैं अच्छा लिख रही हूँ, यह मेरे लिए संतोष की बात है। इसी तरह की मुलाकातों में मुझे उन्हें और करीब से जानने का मौका मिला। उनसे मेरी हर मुलाकात रोचक, प्रेरक और संस्मरणीय होती। कभी बस्तर की संस्कृति की चर्चा होती, तो कभी लोकजीवन की। कभी अंग्रेजों के अत्याचारों का ज़िक्र करते हुए भूमकाल आन्दोलन की दृश्य खींच देते, तो कभी बस्तर के राजाओं, राजघराने के बारे में बताते। कभी बातें होतीं बस्तर के तीज–त्योहारों, उच्छब–परब की। बस्तर के जंगलों की, वहां के धार्मिक मान्यताओं एवं रीति–रिवाजों की। कभी वनवासियों के अल्हड़पन की, भोलेपन की, कभी उनके शौर्य की या शोषण की। विभिन्न विषयों पर बातचीत करते हुए कभी जोश में आ जाते, कभी व्यंग्य करते हुए हँसने लगते। कभी अव्यवस्था और शोषण से दुखित हो जाते। उनकी हँसी बच्चों सी मोहक और अम्लान लगती थी। क्रोधित मुद्रा में बड़ी–बड़ी आँखें और चौड़ी तथा ललिमायुक्त हो जातीं, भृकुटियाँ तन जातीं और आवाज़ ऊँची होकर काँपने लगती थीं। लगभग 87 वर्ष की आयु में भी उनकी याददाश्त पक्की थी।

कई बार चर्चा का क्रम तोड़कर उठ खड़े होते थे। पलंग के पास स्टूल रखकर उस पर चढ़ जाते और आलमारी में पीछे की तरफ़ रखी हुई किसी संदर्भित पुस्तक को उठाकर, पृष्ठ तक खोलकर दिखाते या पढ़वाते थे। फिर सम्हालकर पुस्तक, यथास्थान रख देते थे। मैंने अनुभव किया कि उन्हें बहुत खुशी होती थी ऐसा करने में। एक जिज्ञासु की क्षुधा शांत करने में, अपना ज्ञान और अनुभव बाँटने में। बस्तर पर शोध कर रहे विद्यार्थियों और इच्छुक विद्वानों ने उनके अनुभव का लाभ उठाया है। वे बस्तर के माटीपुत्र हैं। उन्होंने यहाँ की संस्कृति को बहुत करीब से परखा है। सुविधारहित जीवनयापन करते हुए

लोकसंगति में बस्तर को जिया है। तब कहीं अपने अनुभवों और चिन्तन से लेखनी को गति दी है।

बातों ही बातों में उन्होंने कहा था– बहुत दुख होता है उन लोगों से, जो बस्तर में पर्यटक बनकर आते हैं, दो– चार दिन रूककर लौट जाते हैं और व्यावसायिक पत्र–पत्रिकाओं में अपने लेख चित्रों सहित छपवाकर, बस्तर के संबंध में अपनी विशेषज्ञता का दावा करने लगते हैं। बगैर काम किये नाम कमाने की आकांक्षा में जहाँ ये बस्तर के संबंध में भ्रामक जानकारियाँ परोसते हैं, वहीं बस्तर की गरिमामयी संस्कृति को विकृत रूप में प्रस्तुत करते हैं। उन्हें लताड़ते हुए लालाजी के शब्द हैं –

भागा–भागा फिर रहा इंसान
मर गये हम तो।
कैमरों का अभियान खुले वृक्षों पर
घोटुल माने सहवास
मर गये हम तो।

एक दिन दोपहर उनके घर पहुँची, तो देखा उनके कमरे में कई गुलदस्ते (बुके) रखे हुए थे। कपड़े भी नये लगे और माथे पर तिलक था। मन में विचार चल रहा था कि कहीं आज इनका जन्मदिन तो नहीं। उन्होंने मिठाई का डिब्बा आगे बढ़ाया और हँसते हुए कहा– अच्छा हुआ, तुम आ गयी। आज मेरा जन्मदिन है। 82 साल हो गये। मैंने चरणस्पर्श कर उन्हें बधाई दी। उस दिन फिर उन्हीं के बारे में बात होती रही– सुबह–सुबह अवस्थीजी आये थे, बंशीलालजी आये थे। अचिन्त्यजी भी अभी–अभी गये हैं। कुछ भेंट भी रखी हुई थी। बताया– फलां–फलां लाया था। इसी क्रम में उन्होंने बताया – 17 दिसम्बर 1920 को भोपालपट्नम के पास एक छोटे से गाँव मद्देड़ में उनका जन्म हुआ था। पिता का नमा श्री रामलाला (बाबू) था, माता श्रीमती जीरा बाई श्रीवास्तव के ममत्व और स्नेहभरे आँचल तले उनका पालन–पोषण के लिए उनके जीवन–संघर्षों को बताते हुए उनकी आँखें नम हो जाती थीं, गला रूंध जाता था। माता की जिम्मेदारियों में उन्होंने भी साथ निभाया–फलतः पढ़ाई–लिखाई नहीं कर पाये, परन्तु सरस्वती की साधना आजीवन की।

बातों–बातों में उन्होंने बताया कि उन्हें शाला में दाखिल कराने बड़े पिताजी का बेटा ले गया था। उसे सही नाम न मालूम होने के कारण लाला लिखवा दिया था, परन्तु मेरा नाम सेतलाल श्रीवास्तव है। मेरे पूछने पर उन्होंने बताया कि लिखना सन् 1936 से शुरू किया। पहली रचना सन् 1939 में बम्बई के सम्मानीय साप्ताहिक पत्र श्री वेंकटेश्वर समाचार में लाला जगदलपुरी के नाम से प्रकाशित हुई थी। वे कहते थे– लिखता था, पढ़ता था और फाड़ देता था, जब तक खुद को संतुष्टि नहीं होती थी। बड़ी मिहनत और मुश्किल से रचना जन्म लेती है। मैं अधिक लेखन नहीं, उसकी गुणवत्ता का हिमायती हूँ। उन्होंने बताया था कि उनके प्रारंभिक लेखन–काल में बस्तर का पर्यावरण सर्वथा असाहित्यिक था। निष्पक्ष बोलने की भी मनाही थी। राष्ट्रीय विचारों के अखबार पढ़ना भी प्रतिबंधित था। स्वतंत्र चिन्तन और लेखन के लिए कहीं गुंजाइश नहीं थी। ऐसे शुष्क और विपरीत माहौल में मुझे बहुत छटपटाहट होती थी और यहीं से मेरी कविता का जन्म हुआ। एक बार मैंने सहजता से पूछ लिया– आप इतना अच्छा लिखते हैं, शब्दों का चयन इतना सटीक और प्रभावी रहता है, कैसे ? तो उन्होंने कहा था – मैं सायास लेखन से बचता हूँ। कोई भी रचनाकार शब्द–तालिका लेकर सृजन नहीं करता। सृजन–कर्म की मनःस्थिति में विचार चलते रहते हैं। इस समय मैं लगभग अंधा और बहरा हो जाता हूँ। राह चलते गेय बनने में मुझे मज़ा आता है। अपने भीतर आधार–पंक्तियों की गुनगुनाहट चलती रहती है और वह अब तक चलती रहती हैं, जब तक संबंधित रचना का उद्भव नहीं हो जाता। रचना–प्रक्रिया के दौरान मैं एकांत चाहता हूँ, लेकिन दिन–भर तो यहाँ बच्चे शोरगुल करते रहते हैं और रात रात बिस्तर पर जाते ही बड़ी देर रात तक शब्द चिल्लाते रहते हैं और तब तक चिल्लाते रहते हैं जब तक उन्हें गीत, ग़ज़ल, मुक्तक या क्षणिका की कतारों में बैठा न दूँ। परन्तु भूलवश यदि किसी काव्य पंक्ति में अयोग्य शब्द की घुसपैठ हो जाय, तो उस शब्द की छटपटाहट सुनते ही बनती है। उस शब्द को मैं तरस खाकर पंक्तिमुक्त करता हूँ, रिक्त स्थान पर प्रतीक्षाकुल अधिकारी शब्द को बिठाकर उसके साथ न्याय करता हूँ। तब कहीं मुझे नींद आ पाती है। विपरीत स्थिति में –

विचार आते हैं, नींद नहीं आती।
शब्द चिल्लाते हैं, नींद नहीं आती
कई बेहतरीन कल्पनाओं के पंख कट जाते हैं
नींद नहीं आती

जिस तरह मुझे उन्हें अपनी रचना दिखाने की तत्परता रहती, उसी तरह उन्हें भी देखने की आतुरता रहती थी। हमेशा मुस्कुराते हुए स्वागत के साथ शब्द हुआ करते थे– आज क्या लायी हो ? और मैं अपनी नयी रचना उनके सामने रख देती

थी। मैं भलीभाँति जानती हूँ कि उनके सामने मैं कुछ भी नहीं, फिर भी एक अबोध बच्चे की तरह मेरी कोशिश को उन्होंने हमेशा स्नेह दिया, प्रोत्साहन दिया। बातों में ही बताया कि डॉ. धनंजय वर्मा, गुलशेर खां शानी के प्रारंभिक रचनाकाल को लालाजी का आन्तरिक स्नेह मिला है, जिसे दोनों ने खुलकर स्वीकारा है। इससे प्राप्त संतोष को लालाजी अपना स्थायी ध ान मानते हुए उनसे जुड़े संस्मरण सुनाने लगते। कवि लक्ष्मीनारायण पयोधि पर चर्चा करते हुए कि पयोधि ने उनके सहयोग से गुण्डाधुर नामक ऐतिहासिक पात्र पर गुण्डाधुर नाटक लिखा, जिसके मंचन ने पयोधिजी को प्रदेशस्तर पर सम्मान दिलाया। इसी तरह शानी को उनकी कहानी काला पानी पर बनी टेलीफिल्म ने खासी पहचान दिलायी। समकालीन वरिष्ठ रचनाकारों में कभी पं. केदारनाथ ठाकुर, ठाकुर पूरनसिंह, मावलीप्रसाद श्रीवास्तव, नारायणलाल परमार आदि के बारे में भी बहुत कुछ बताया। आयु के नवें दशक में भी इतने सारे साहित्यकारों, पत्रकारों, सम्पादकों, प्रकाशकों को रचनाओं सहित याद करते थे कि मैं अचंभित रह जाती थी, उनकी याददाश्त, अनुभव और ज्ञान पर। पं. गंगाधर सामंत, हरि ठाकुर, बस्तर के प्रथम पत्रकार के रूप में पं. देवीरत्न अवस्थी करील को पत्रकार योद्धा के रूप में निरूपित किया और बताया कि बस्तर की प्रथम न्यूज एजेंसी स्व. वी.आर.चिंचोलकर (आपाजी) ने शुरू की थी, जो अद्यतन चल रही है, जहाँ उस समय भी नागपुर टाइम्स, हितवाद, हिन्द स्टेट्समेन, बेनेट कोलमैन, युगधर्म आदि मिल जाया करते थे।

उन्होंने बड़ी ईमानदारी से स्वीकार किया कि बस्तर इतिहास के यशस्वी साधक डॉ. के.के.झा के सत्संग का भी उन्होंने लाभ उठाया है। वे वरिष्ठ साहित्यकारों को सम्मान देते थे, नये रचनाकारों को स्नेह देते थे और लेखन–पठन में रूचि रखनेवालों को उत्साहित करते थे। इस बात की पुष्टि आकाशवाणी द्वारा प्रसारित एक रूपक 'बस्तर में हिन्दी साहित्य' से होती है, जिमसें बस्तर के प्रारंभिक काल से लेकर समकालीन साहित्यकारों तक में हम जैसे नव रचनाकारों के नामों का भी उल्लेख किया है।

रचनाकारों और रंगकर्मियों में मद्य–सेवन की लत से वे दुखी थे। उन्होंने कहा था– शानी और दुष्यन्तकुमार को समय से पहले मौत नहीं, मद पी गयी। रंगमंच से जुड़े कुछ स्थापित रंगकर्मियों का नाम लेकर कहते थे कि अच्छा काम कर रहे हैं ये सब, पर मद्यपान कर सब गड़बड़ कर देते हैं। अपनी आयु तक घटा रहे हैं ये पढ़े–लिखे समझदार लोग।

लालाजी बहुत स्वाभिमानी थे। उन्हें भारत सरकार की ओर से उनके योगदान के ऐवज में आर्थिक सहयोग की राशि सात सौ रूपये मिलती रही। एकाएक वह बंद हो गयी। एक पत्र मिला जिसमें स्वयं के जीवित रहने का प्रमाणपत्र प्रस्तुत करने के बाबत लिखा था। मैं यह जानती हूँ कि यह एक प्रशासकीय प्रक्रिया है, परन्तु इस पत्र से उनका स्वाभिमान आहत हुआ। उन्होंने मुझे वह पत्र दिखाते हुए कहा था कि मै लिखकर तो नहीं दूंगा, चाहे राशि मिले या न मिले। जिस दिन मैं नहीं रहूंगा, ख़बर उन तक स्वयं पहुँच जायगी। और कई महीनों तक उन्हें पैसा नहीं मिला। उन्होंने बताया कि उनका प्रकरण केन्द्र सरकार ने राज्य शासन को भेज दिया है। कई महीनों के बाद उन्होंने बताया कि छत्तीसगढ़ शासन से देय राशि प्राप्त हो गयी। उनकी वृद्धावस्था में आकाशवाणी के मानदेय और शासकीय अनुदान के अलावा आय का कोई स्त्रोत नहीं था। घोर आर्थिक संकट के समय भी उन्हें राजकीय सहायता के प्रस्ताव प्राप्त हुए थे, परन्तु उन्होंने उन्हें स्वीकार नहीं किया। अपितु सिद्धांत पर अडिग रहे। शिक्षण, सम्पादन और पत्रकारिता से अर्जित आय से ही उन्होंने अपनी माँ को परिवार चलाने में सहयोग दिया।

उनका स्वाभिमान बना रहा। कभी किसी से कुछ नहीं मांगा। हमेशा सबको दिया ही दिया। सेवा भी किसी से नहीं करवाते थे। अपने हाथ–पैर पर तेल–मालिश स्वयं ही करते थे। सिर्फ चाय और परोसी हुई खाने की थाली उन्हें दो वक्त मिलती थी। दोबारा कोई पूछता–परोसता नहीं था। वे दाल बड़े चाव से खाते थे। खाने के बाद थाली कमरे के बाहर स्वयं रख देते थे, जिस कोई ले जाता होगा। कई बार मैंने उनकी जूठी थाली देखी। दाल की कटोरी साफ, पर भात (चावल) बचा रहता था। मुझे लगता कि थोड़ी सी दाल और परोस दी जाती, तो शेष भात भी खा लेते। शायद यह यथार्थ हो या मेरी आत्मीयता की आवाज़।

दोपहर तीन बजे के बाद घूमने निकल जाते थे और पाँच–छह किलोमीटर का नगर–भ्रमण किया करते थे। चौपाटी पर चाट, दही–बड़ा आदि खाते उन्हें देखा जा सकता था। वे या तो खाने के शौकीन थे या दोपहर और रात के खाने के बीच लम्बा अन्तराल होने के कारण चाट–ठेले पर जाते।

समय के पाबंद तो इतने थे कि समय से पहले पहुँचना उनकी आदत थी। आकाशवाणी में ध्वन्यांकन के लिए दोपहर दो बजे बुलाकर तीन बजे रिकार्डिंग शुरू किये जाने पर कई बार नाराज़ हुए। फलतः आकाशवाणी के कार्यक्रम प्रभारी उनका विशेष ध्यान रखते थे।

एक दिन हमनें उन्हें घर पर आमंत्रित किया। बात यह हुई थी कि सुबह ग्यारह बजे मेरे पति उन्हें लेने उनके निवास पहुँच जायेंगे, दिन भर वे हमारे साथ घर पर रहेंगे और शाम उन्हें घर वापस पहुँचा देंगे।उन्हें लिवाने जाने में वैद्य जी को दस मिनट का विलम्ब हो गया। लालाजी इधर–उधर टहल रहे थे। वैद्यजी के पहुँचते ही लालाजी ने कहा– 10.55 से तैयार होकर खड़ा हूँ। वैद्यजी उन्हें अपने स्कूटर पर बिठाकर घर लाये। दिन भर वे साथ रहे, मैंने उनकी पसंद की दाल और लौकी की सब्जी खास तौर पर बनायी थी। उन्होंने बड़े चाव से खाया, जिससे मुझे बहुत खुशी और संतुष्टि मिली। वे बच्चों से भी बातें करते रहे, हमारी फोटो एलबम देखी, मेरी तमाम डायरियाँ देखीं और पढ़ीं। मैंने अपनी प्रारंभिक रचनाएँ (कक्षा–छठवीं–आठवीं की) दिखायीं और कहा कि जब बच्चीं थी, तब लिखीं थीं। उन्होंने बड़े प्यार से कहा कि तुम अभी भी बच्ची हो। वे शब्द आज भी कानों में रस घोलते हैं।

वह दिन मेरे लिए अविस्मरणीय बन गया। उन्होंने भी कुछ कविताएँ सुनायीं और मैंने भी, जिन्हें मैंने रिकार्ड कर लिया, जिन्हें हम बार–बार सुना करते हैं। उनकी प्रस्तुति के अंदाज़ को गुनते हैं कि प्रभावशाली प्रस्तुत के लिए कहाँ ठहराव, कहाँ शब्दों में प्रवाह और वजन देना होता है। आज लालाजी की आवाज़ मेरे पास है और मैं जब चाहे उसे सुन सकती हूँ। यह मेरे लिए एक बहुमूल्य उपलब्धि है। घर पर ही हमारा फोटो–सेशन हुआ–हमारे और बच्चों के साथ। लालाजी का एक फोटो बहुत सुन्दर आया, जिसको फ्रेम करवाकर हमने उन्हें दिया, तो वे बड़े खुश हुए। उसे अपने कमरे में दीवार पर लगा दिया। कुछ दिनों के बाद बताया गया कि रायपुर के पुरातत्वों कर्मी आये और उन्हें अच्छा लगा, तो ले गये। हमारे पास उसकी एक प्रति सुरक्षित है।

लालाजी का लेखकीय व्यक्तित्व जितना विराट था, स्वभाव में वे उतने ही सहज और निश्छल थे। अपनी सज्जनता और सहजता के कारण किसी पर भी विश्वास कर लेने के कारण हर बार छले गये। कभी दिल्ली से, कभी भोपाल से कोई आता, उनके उकसाने पर लालाजी खोल देते अपने ज्ञान का अकूत खजाना। लोकभाषा और लोकसाहित्य के क्षेत्र में उनके काम का लाभ उठाकर कुछ लोग सामग्री ले गये, अपने नाम से प्रकाशित कर खुद नृतत्वशास्त्री और भाषाशास्त्री बन गये।

सन् 2005 में मेरा स्थानान्तर रायपुर हो गया। पत्रों के माध्यम से लालाजी के सम्पर्क में रही। उनके स्नेहाशीष भरे पत्र आज अमूल्य अमानत है। समयान्तराल के साथ पत्रों का क्रम घटते–घटते टूट सा गया। जब भी जगदलपुर जाती, पर्याप्त समय लेकर लालाजी के पास जाती। धीरे–धीरे उनका शरीर क्षीण हो चला, श्रवणशक्ति कमजोर हो गयी। काफी तेज बोलने पर सुन पाते थे। अतः हम लिख–लिखकर बातें करते। कभी लिखकर जवाब देते और कभी केवल मुस्कुराकर ही रह जाते थे। एक बार हम उनके जन्मदिन पर पहुँचे, तो वे इतना खुश हुए कि उनकी खुशी का बखान करना मुश्किल है। वे चाहते तो थे, पर उन्हें हमारे पहुँचने के उम्मीद नहीं थी। बातों ही बातों में उन्होंने एक बार कहा था– आज स्टेशनरी दुकान गया था, पारकर पेन देखा, बहुत महंगा हो गया है – 200 रूपये का। पहले पारकर से ही लिखा करता था। मैं उसे वापस रखकर आ गया। मेरे मन में यह बात अंकित थी। हमने उन्हें एक डायरी और पारकर पेन दिया, तो वे इतने अभिभूत हो गये कि उनके साथ हमारी आँखें भी नम हो गयीं। शतायु होने की कामना पर उन्होंने कहा था– बस!

क्रमशः जगदलपुर–प्रवास भी कम हो गया। फोन लालाजी सुन नहीं सकते थे। अतः सम्पर्क भी टूट सा गया। आठ वर्षों में बमुश्किल आठ बार गयी होऊंगी। साहित्यिक मित्रों और सहेलियों से जानकारी होती रहती थी। बीच में पता चला कि कवि–निवास का जीर्णोद्धार हो रहा है। परिवार किराये के मकान में चला गया है। लालाजी अब पैदल नहीं चलते। इच्छा होने पर रिक्शे में बैठकर नगर–परिक्रमा करते हैं। गोष्ठियों और आकाशवाणी में जाना बंद हो गया है। उनकी खराब तबीयत की वजह से उनके भाई केशवजी लोगों को उनसे ज्यादा मिलने नहीं देते और लालाजी की ज़िंदगी कमरे तक सिमट गयी है। पता चला, ज्यादा बीमार चल रहे हैं। हम मिलने गये। नवनिर्मित मकान 'आस्थायन' में। वही छोटा–सा कमरा, (जिसके दरवाजे पर कवि–निवास लिखा था)। लालाजी हमें आरामकुर्सी पर बैठे मिले, पर हमेशा की तरह उठकर स्वागत नहीं किया। शायद पहचान नहीं पाये। हमने चरणस्पर्श कर अपना नाम लिखकर दिया। पढ़ते ही सारी शक्ति समेटकर उठ खड़े हुए और हाथ जोड़ बोले– माफ़ करना बेटा, पहचान नहीं पाया, काफी दिनों बाद आयी हो इस बार। न पहचान पाने का उन्हें काफ़ी अफ़सोस था। फिर बोले– हमेशा याद करता हूँ, पर पहचान नहीं पाया। मेरा दोष नहीं, उम्र का दोष है। नज़र कमजोर हो गयी है। फिर ढ़ेर सारी बातों हुईं। अपना संकलन निकालो, मैं भूमिका लिखूंगा। मैंने हामी भरी। लालाजी ने खूब बातें कीं। हम सुनते रहे। हमने लिख–लिखकर बातें कीं, वे मेग्नीफाइंग ग्लास से पढ़ते रहे। हमने चरणस्पर्श कर अनुमति मांगी। फिर उन्होंने हाथ जोड़ मुस्कुराते हुए कहा था– माफ़ करना, पहचान नहीं पाया था। उनकी वह विनम्र मुद्रा मैंने मोबाइल में कैद कर ली और उसका वॉल पेपर बना लिया। एक दिन मोबाइल पर ख़बर मिली की सरस्वती का सतत साधक सांसारिकता से

मुक्त होकर अनन्त यात्रा पर चल पड़ा है। मेरी आँखों में आँसू थे, मन में अफ़सोस कि मैं उनकी अंतिम इच्छा पूरी न कर पायी। उन्हें मेरे प्रथम काव्य–संकलन की भूमिका लिखनी थी। नव रचनाकारों के लिए संदेश है उनकी यह कविता–

चलने दो
नयी कलम का हल चलने दो/जब तक माटी कंचन न बने
जब तक धूप चंदन न बने/तब तक....!

अंत में, मेरी श्रद्धांजलि इन शब्दों में–
स्वार्थवश दुनियावालों ने/उन्हें अक्सर छला है
ग़मों का गरल पीकर/जिनका जीवन अमृत सा ढला है।
दृढ़निश्चयी स्वाभिमानी/कभी न झुकनेवाला
अर्जित अनुभव ज्ञान के/सूरज सा लुटानेवाला
बस्तर–संस्कृति–मर्मज्ञ/काव्यकला की धुरी
साहित्य–साधना–संलग्न
ज़िन्दगी जिनकी पूरी
मां सरस्वती के साधक
प्रणम्य लाला जगदलपुरी।

श्रीमती किरणलता वैद्य
देवपुरी, रायपुर (छ.ग.)
मोबा. 98265–16430

संस्मरण कविता–पूनम वासम

लालाजी को सादर श्रद्धांजली

स्मृतियों का वो धुंधलापन
जब याद आता है मुझको
तो सर्वप्रथम
याद आते हैं आप
वो छोटी–बड़ी बातों को
लेकर घंटों बहस करना
कभी जानकी आंटी के
हाथों का हलवा
तो कभी उपमा का
साथ में स्वाद लेना
एक–एक रूपये के
जुगाड़ से खरीदे गये
मेरे केलों की मिठास
मुझे आज भी
गौरवान्वित होने का
दिलाती है अहसास।
स्मृतियों का वो धुंधलापन
जब याद आता है मुझको
तो सर्व प्रथम
याद आते हैं आप
जब बिना चश्मे के
एक ही सांस में
पढ़ लेते थे
मेरी लिखी हुई
अर्थहीन कविता
कहां पूर्ण विराम
अल्प विराम
कहां मात्रा
और कहां शब्दों
के हेर–फेर का
व्याकरण
सबकुछ/सबकुछ
दिखता था आप को
जो पन्ने पर लिखा
होता और जो
लिखना बाकी होता
मेरे अंदर ही अंदर
स्मृतियों का वो धुंधलापन
जब याद आता है मुझको
तो सर्वप्रथम
याद आते हैं आप।
आप का सानिध्य
मेरे लिए जैसे
टूटते बिखरते
सपनों को
पिरो लेने की माला
पलभर में बहुत कुछ
सीखने की जैसे हो
पाठशाला
खुशकिस्मत हूं मैं
जो आपकी
छत्रछाया में
मैंने कुछ वक्त गुजारा
जसकी अनुभूति
आज भी
मेरे भीतर जीवित है
बिल्कुल वैसे ही
जैसे बस्तर
जीवंत है आपमें
और आप जीवित
हैं हम सब के भीतर....
स्मृतियों का वो धुंधलापन
जब याद आता है मुझको
तो सर्वप्रथम
याद आते हैं आप।
सचमुच आपका जाना
बेहद खलता है....
स्मृतियों का वो धुंधलापन
जब याद आता है मुझको
तो सचमुच
याद आते हैं आप।
बहुत याद आते हैं आप।।

पूनम वासम
बीजापुर
जिला–बीजापुर छ.ग.
मो.–094242492757

संस्मरण–नरेन्द्र पाढ़ी

संरक्षक व वंदना गीत के रचियता

सन् 1987 में पंजीकृत ''बस्तर माटी'' लोक सांस्कृतिक मंच, जगदलपुर के संरक्षक स्व. लाला जगदलपुरी द्वारा हल्बी में रचित वन्दना गीत..... ''धन, धन बस्तर माय धरतनी,

तुचो मया चो छांय ऐ धनी।''

आज भी याद है सांस्कृतिक संस्था के लिए लाला जगदलपुरी के संरक्षक बनने की बात.....एवं उनके द्वारा रचित हल्बी वन्दना गीत की यादें.....। बस्तर माटी लोक सांस्कृतिक मंच जगदलपुर के कलाकार पदाधिकारी बस्तर के साहित्यकार, लेखक, कवि, गीतकार, लोक संस्कृति के जानकार, सरल हृदय के व्यक्ति को सांस्कृतिक संस्था के संरक्षक बनाने के लिए उनके घर कवि–निवास डोकरी घाट पहुंचे, तब लाला जी आराम कुर्सी में बैठे पुस्तक पढ़ने में लीन थे। हमने लाला जी का अभिवादन किया। उन्होंने स–स्नेह बैठने को कहा, वैसे कला, संस्कृति के क्षेत्र में लाला जी से पूर्व परिचय रहा। उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा.....कैसे आना हुआ ? हमने कहा बस्तर की बोली हल्बी में सांस्कृतिक कार्यक्रमों की प्रस्तुति के लिये ''बस्तर माटी'' लोक सांस्कृतिक मंच का गठन किया गया है।

''बहुत अच्छा नाम है, जो बस्तर का प्रतिनिधित्व करता है।'' लाला जी ने कहा। हमने अपनी बात रखते हुए लाला जी से कहा.....इस.....सांस्कृतिक संस्था के संरक्षक का भार आपको सौंपने का निश्चय किया है। क्या आप हमारी संस्था के संरक्षक बनना स्वीकार करेंगे ? कुछ देर मौन रहकर लाला जी ने अपनी स्वीकृति दी, लेकिन उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा ''मुझे आश्चर्य हो रहा है कि आप लोगों ने मुझे संस्था के संरक्षक बनाने का विचार किया, वैसे आर्थिक रूप से सम्पन्न व्यक्ति को संरक्षक का पद दिया जाता है।'' ऐसा कहते हुए भाव विभोर हो उठे, और हमें आशीर्वाद दिया। उन्हें सांस्कृतिक संस्था का संरक्षक बनाने का सौभाग्य पाकर हम सभी गौरान्वित हुए। खैर यह थी लाला जी की महानता। लालाजी की एक बात और. ..... पुनः लालाजी को हमने एक वन्दना गीत हल्बी में लिखने को आग्रह किया, जिसे ''बस्तर माटी'' सांस्कृतिक मंच द्वारा मंच पर कार्यक्रम आरंभ के पूर्व गाया जाय। लालाजी ने एक ऐसा वन्दना गीत लिखा, जिसमें बस्तर के समस्त देवी देवताओं का वर्णन रहा है। जिसे कलाकारों ने 'देवपाड़' में संगीतबद्ध किया। और एक कलाकार को थाल पकड़ाकर दीप, अगरबती से वंदना–गीत का अभ्यास कराया। हारमोनियम, ढोलक, मंजीरा, तुड़बुड़ी के साथ गीत को देवपाड़ में कलाकारों ने गाना शुरू किया।

''धन धन बस्तर मांय धरतनी।
तुचो मया चो छांय ऐ धनी।।''

कलाकार उत्साह पूर्वक गीत गाने लगे, जैसे–जैसे गीत आगे बढ़ता, देवधामी के वर्णन होने पर अभ्यासरत कलाकार के पैर कांपने लगे, कलाकार ने आगे अभ्यास करने से मना कर दिया। पुनः एक कलाकार ने स्वयं इच्छा जाहिर करते हुए थाल पकड़कर अभ्यास आरंभ किया, जब ढोल, मंजीरा, तुड़बुड़ी के साथ देवपाड़ में कोरस–गीत होने लगा, तब उस कलाकार के भी पैर काँपने लगे, लेकिन उसने हिम्मत नहीं हारी, और कहने लगा, गीत बंद मत करना, गाते रहो, जल्दी–जल्दी गाओ, और देखते ही देखते कलाकार को देवी चढ़ने लगी, हमने देवी का रूप देखा, कुछ कलाकार डरकर सहम गये। धीरे–धीरे वह कलाकार जमीन पर बैठ गया, देवी झुमने लगी.....देवी झुमने लगी, पसीने से लथपथ उस देवीरूपी कलाकार को देखते ही रह गये। सांस्कृतिक संस्था के एक बुजुर्ग कलाकार जो देवी देवताओं को समझते थे, उन्होंने पूछना आरंभ किया.....

''तुमी कोन आहास, कसन इलास, आमी पीलामन के तुमी माफी दियास, खेल–खेल ने आमी गोटक नाटक मंडली बना लूंसे'' झूमते हुए कलाकार ने कहा..... मैं दन्तेश्वरी मांय चो छांय आय, तुमी अच्छा करला सहास, मके गीत, गाउन–गाउन हाक दिलास, मय तुमचो लगे इलेंसे, अंदाय मके नी छांडा, जहां बले मंडली चो कार्यक्रम होयदे मचो फोटो आऊर गोटक लीमऊ जरूर राखासे। तुमचो मंडली खुबे आगे बाढ़े दे.....नाम होयदे.....'' अब देवी को शांत करना था, हमारे ही संस्था के एक कलाकार ने देवी शांति गीत गाया.....''डोकरी आया मांय फिरता,/खाऊन पान चोपा देस तुई।''

धीरे धीरे देवी का झुमना शांत हुआ, देवी शांत हुई, हम सभी कलाकार सीहर उठे थे। देवी ने हमे परसाद के रूप में चावल दिया। बस्तर जिले के विभिन्न क्षेत्रों में बस्तर माटी लोक सांस्कृतिक मंच का सफल मंचन हुआ, जहां हमने देवी मां का आवहान कर कार्यक्रम की शुरूआत की। लालजी नहीं रहे, लेकिन आज भी उनके द्वारा रचित वन्दना गीत, उनकी याद दिलाता है।

नरेंद्र पाढ़ी
संयोजक,
बस्तर माटी लोक सांस्कृतिक मंच
पथरागुड़ा वार्ड
जगदलपुर–बस्तर 94255–36514

कालजयी साहित्य सर्जक ''लाला जगदलपुरी''

बी.एन.आर.नायडू
नायडू मेन्शन
मेन रोड
जगदलपुर
बस्तर –(छ.ग.)
मो.–09424280113

किसी भी देश काल में साहित्य सागर की लहरों का उद्दाम स्वरूप भी समसामयिक ज्वारभाटे के साथ प्रकंपित होता है, और रचनायें भी उसी तर्ज पर सामने आती हैं परन्तु कुछ व्यक्तित्व इस प्रकंपन से परे, ''समझ भरोसे बैठकर जग का मुजरा देख'' की तर्ज पर अपने लेखन व लेखनी में निरत रहते हैं। बस्तर की माटी में रचा बसा रविन्द्र ठाकुर के ''एकला चलो रे'' गीत को संजोए– लाला जगदलपुरी के अतिरिक्त कोई हो ही नहीं सकता। अकेले चलते हुए भी यह व्यक्तित्व पूरे बस्तर के जंगल, जमीन, जन–जन को लेकर अपने साथ चला जीवन भर।

पता नहीं क्यों उनकी तरफ, हमेशा मैं एक खिंचाव महसूस करता था, ये बात बाद में समझ में आई लाला जी का मेरे परिवार और पिता से अन्तरंग संबंध था। चार दशक से मैं उन्हें देखता था, युवा एवं प्रौढ़ता की वयसंधि के बीच, काले लम्बे बाल, ओजस्वी चेहरा, भाव–प्रवण बड़ी–बड़ी आँखें, वाणी में माधुर्य परन्तु रोबीला सा यह व्यक्तित्व मुझे भयाक्रान्त ही करता रहा। अपने घर में, पिता से, दादी से सुन–सुनकर नेह सा होने लगा कि इस व्यक्तित्व और उसके कृतित्व को टूटे–फूटे शब्दों में अनगढ़ अपरिपक्व शैली में अभिव्यक्त करूँ, नहीं कर पाया तो बस्तर के पुराने प्रवासी लोगों के अपनापन और रिश्तों के साथ अन्याय ही होगा। हम बस्तरिया लोग इन रिश्तों को प्रगाढ़ रक्त संबंध की तरह अटूट बनाने के लिए विशिष्ट विशेषणों के साथ बांधते थे यथा–भोजली, महापरसाद गजामूंग, फूलमीत, मीत, आमाडार, घरबहू जो पीढ़ियों तक चलते हुए उसी प्रगाढ़ता श्रद्धा अपनत्व से निभाए भी जाते रहे। आज यह असंभव सा लगता है। ऐसे ही रिश्तों का बंधन था लालाजी के साथ जो समय के साथ गुम सा गया था। इन्हीं रिश्तों को बांधने जोड़ने का पुर्नप्रयास था, पहली बार हाईवे चैनल 2001 में एक आलेख लिखा ''लाला जगदलपुरी एक व्यक्तित्व एक कृतित्व'' उन्होंने पढ़ा, प्रसन्न हुए। लोगों से पूछा कि यह व्यक्ति कौन है, जब लोगों ने मेरे पिता के संदर्भ में बताया कि उनका पुत्र हूँ। 17 तारीख के समाचार पत्र में मेरा आलेख था, उसमें रेखाचित्र बस्तर के प्रख्यात चित्रकार श्री बंशीलाल विश्वकर्मा ने बनाया था, 20 सितंबर की शाम वो मेरे घर के सामने थे। मैंने, उनके चरणस्पर्श किए, अन्दर बुलाकर उन्हें बैठाया। सामने बैठकर एक पत्र देकर, उन्होंने मेरी प्रशंसा की। काफी देर तक बातें होती रही, परन्तु मैं जैसे कहीं और खो गया, लगा सामने मेरे बस्तर के दीधिचि बैठे हैं, जीवन भर घात–प्रतिघात झेलते हुए, आहत होते हुए भी अडिग, दृढ़, विनम्र, व्यक्तित्व बने रहे। उन्हें न कभी मानद् उपाधियों की, न सम्मान की, न ही अलंकरणों ने मोहा। वे तो बस अपनी धुन में चलते रहे। उनके साथ वो पहला सानिध्य मुझे अवाक कर गया था। लगा कि मैं बोलते हुए इन साईक्लोपिड़िया के सामने बैठा हूं, उन्होंने सभी पुराने अपने लोगों की बातों को अत्यंत सजीव शैली में चित्रवत कर दिया। उन पुराने लोगों के नाम गिनाने बैठूं तो, उनका वर्णन शायद अधूरा रह जाएगा है।

एक आश्चर्यजनक बात जो मेरे जेहन में अब भी है कि मेरे पिता एक कलाकार थे उन्होंने अंग्रेजी एवं हिन्दी नाटकों में काम भी किया था। उनके साथ ''कायम सेठ, हाजी सरदार खान, कुंजबिहारी श्रीवास्तव, कलीमुल्ला खान वगैरह भी थे। जब से होश सम्हाला कम से कम तीन लोगों को मैंने जितना जाना कि कला, नाटक से उनका रिश्ता ही नहीं दिखा। बस्तर के क्रान्तिकारी पी.सी.नायडू कप्रान नागोराव नायडू, दुबे परिवार के एक–एक सदस्य गंगाधर दुबे उनकी धर्मपत्नी श्रीमती दुबे जो छत्तीसगढ़ के प्रसिद्ध विद्वान पंडित सुन्दरलाल शर्मा की पुत्री के बारे में सुनता मैं मंत्रमुग्ध सा बैठा रहा। इस घनीभूत संध्या के बाद वो यदाकदा मेरे पास आते थे। घर के सामने से निकलते थे परन्तु मेरे न रहने पर या न दिखने पर इधर देखते ही नहीं थे, इसे उनका सम्मानीय स्वाभिमान ही कहूँगा। उनके निवास पर भी कभी–कभार गया। कमजोर भी हो गए थे, वार्धक्य भार से नमित, खीजे से चिन्तित से लगते थे परन्तु पहचान कर आत्मीयता से स्नेह से ही मिले। उनकी रचनाओं उनकी पुस्तकों के प्रति जिज्ञासा न प्रगट कर घरेलू तर्ज की ही बातें करता, बस फिर क्या जैसे मंदिर के घंटे की घन गंभीर नाद की प्रतिध्वनि की गूंज की तरह संस्मरण ध्वनि गूंज कानों को आप्लावित कर जाते। विदा लेते समय बड़े प्यार से कहते– फिर आईए। कंधे पकड़ कर कहते– फिर आना बेटा। आज ये उद्गार उस मनीषी की थाथी की तरह सेंत रहा हूँ। किसी भी साहित्यिक गोष्ठी में वो बिना किसी तामझाम के उपस्थित हो जाते। यही उनका बडप्पन सादगी का बाना था। जीवन भर के उनके अनुभव, लोगों से आत्मीय संबंधों के बीच सामंजस्य, सन्तुलन, समन्वयन बनाती उनकी गूढ़ अर्न्तदृष्टि ने सबसे जोड़कर भी अलग ही रखा उन्हें। यही विलक्षणता उनकी रचनाओं में प्रतिबिंबित होती रही। बस्तर को उन्होंने खूब जीया, पूरी शिद्दत से जिया।

यह व्यक्ति अपने मूल नाम, परिवार से अलग अस्तित्व बना कर लाला जगदलपुरी बन गया। आज मात्र व्यक्तित्व हमारे बीच नहीं हैं परन्तु कृतित्व का अक्षत विशाल संसार विरासत में छोड़ गया। बस्तर के कण–कण को, उन्होंने अपनी कृतियो में उकेर दिया। उनके लिए एक ही विशेषण है और वो है ''कालजयी साहित्य सर्जक।''

संस्मरण–धनेश यादव

लाला जगदलपुरी से मेरी मुलाकात

धनेश यादव "कमलेश"
बखरूपारा, नारायणपुर
पिन–494661
मोबाईल–9424286572

15.04.2001 को कोण्डागांव में आदरणीय रावल सर के काव्य संग्रह ''कुचला हुआ सूरज'' के विमोचन के अवसर पर ऐसे महान कलमकार से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वहीं पर डॉ. ध ानंजय वर्मा जी से भी मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मेरी डायरी में दोनो महान विभूति के हस्ताक्षर अंकित है।

पुनः द्वितीय अवसर 19.12.2001 को रावल सर के प्रयास से आकाशवाणी जगदलपुर में मेरी कविताओं के पाठ की रिकार्डिंग पर मिला। तत्पश्चात हम दोनों बस्तर की महान विभूति आदरणीय लाला जगदलपुरी के घर कवि–कुटीर गये। वहां पर एक घण्टे का वार्तालाप मेरे जीवन के अविस्मरणीय क्षणों में एक है। दो दिन पूर्व ही ईद के ही दिन याने 17 दिसम्बर को यह समय था उनके 81 वें जन्म दिन का। लाला जगदलपुरी जी उन दिनों के कटु अनुभव को याद कर रहे थे जबकि उस जमाने में साहित्य यात्रा इतनी सरल नहीं थी। विकट संघर्ष, पथरीला रास्ते, कंटीली पगडंडी, खाई और पहाड़ जैसे उतार–चढ़ाव वाली लंबी यात्रा का सफर करते हुए जिस महामानव ने अपने जीवन का 81वां पड़ाव पार किया था। उनकी स्मृति के खजाने में न जाने कितने अनमोल रत्न भरे पड़े थे। कुछ स्वार्थी तत्वों ने उन्हें लूटा–खसोटा पर उस दरिद्र साहित्यकार के हृदय में तब भी अपने प्रिय–बस्तर के लिए अनमोल प्रेम उपलब्ध थी। दुर्भाग्य है हमारी पीढ़ी का कि उनको जो सम्मान मिलना चाहिए था वह उन्हें नहीं मिल पाया। पर ऐसे महान लोग सम्मान की चाहत रखते ही कब हैं। मैं अपने श्रद्धा–सुमन इस कविता के माध्यम से कर रहा हूँ–

अक्षरादित्य

कद लंबा – कुरता लंबा, ऊंची जिनकी भाल/कद लंबा –डग भी लंबा, लंबी उनकी चाल।
उम्र भर लिखते रहे, लिख गये इतिहास/युग पुरूष करते नहीं, यशोगान की आस।।
हम ऋणी, तुम भी ऋणी, रहेंगे सालों–साल/ऋषि तुल्य जीवन जिनका, कहाँ मिले मिसाल।।
शत्–शत् नमन तुम्हें हैं करते, हे अक्षरादित्य/बात उठे साहित्य की, याद करें तुम्हें नित्य।।

संस्मरण–डॉ.रूपेन्द्र कवि

बस्तर के लोक संस्कति मे लाला जगदलपुरी

डॉ०रूपेन्द्र कवि
"कवि निवास"
ग्राम व पोस्ट–मालगॉव
तहसील–बकावन्ड
जिला–बस्तर, छ.ग.
पिन–494221
मो.–09406200426

बस्तर अपनी विशिष्ट संस्कृति के लिए विश्व के मानचित्र पर अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। बस्तर में आने से पहले एक पर्यटक जो सोचता है, जरूरी नहीं की वह उसे यहां मिले। बस्तर के विषय लिखने –बोलने वालों में अधिकांश ऐसे लोग रहे जिन्होंने बस्तर को बाहरी चश्मे से देखा, एक पर्यटक की तरह चार दिन सैर –सपाटा किये, किसी रेस्ट हाउस के चौकीदार या किसी संभ्रात ग्रामीण से चर्चा कर महंगे कैमरे में कुछ आदिवासी जनजीवन संबंधी फोटो खींचकर राजधानी के रंगीन तथाकथित बड़े अखबारों व पत्र –पत्रिकाओं में प्रकाशन कर बस्तर के विशेषज्ञ होने का दावा करने लगे और आश्चर्य की बात यह भी है कि वे अपने इस कार्य को इतना महान साबित कर गये कि इस पर सम्मान व अवार्ड भी पा रहे हैं, तो कहीं शासकीय तौर पर बस्तर विशेषज्ञ व योजनाकार के तौर पर स्थापित भी हो रहे हैं।

लाला जी की साफगोई मेरे लिए एक प्रेरणा का विषय रही, वे साफ तौर पर साहित्यिक चोर व चोरी से नफरत करते थे।वे रचनाधर्मिता से सारे हिंदुस्तान को आसानी से अपनी बात, बस्तर की बात कह लेते थे परंतु उन्हें आयोजनों से कम लगाव था इसलिए वे झूठे सम्मान व तारिफ से बचने की कोशिश करते थे।लाला जी ने अपने ग्रंथ 'बस्तरः इतिहास एवं संस्कृति' में बस्तर की समग्र लोक संस्कृति को समेट कर गागर में सागर भरने का काम किया है। बड़ी चतुराई से उन्होंने ग्रंथ के लेखकीय में 'मैं शास्त्रीय लेखन का धनी नहीं हूं।' कहा है परंतु मेरी समझ में वे बस्तर की लोक संस्कृति को जीने वाले अध्येता रहे। बस्तर की लोक संस्कृति के विविध पक्षों के जानकार रहे, चाहे वह विवाह, जन्म, मत्यु या फिर नृत्य, गीत, नाट, रेला हो या फिर गोंचा, दशहरा, दियारी जैसे बस्तर के महापर्व; संस्कृति के समस्त पहलुओं पर प्रकाश डाला है। यहां लोक जीवन में विशिष्ट आदिवासी संस्कृति में उनके वस्त्र– आभूषण, रहन–सहन, रीति–रिवाज की विविधता वाले आयामों को हुबहू चित्रांकित किया है।यह कहना अतिश्योक्ति न होगा कि लाला जगदलपुरी स्वयं बस्तर के इतिहास पुरूष बन गये व उसका हिस्सा बनकर उसमें समा गये।

दण्डकारण्य का दाण्ड्यायण : लाला जगदलपुरी

रायपुर से पढ़ाई खत्म करके भोपालपटनम् लौटा तो साहित्य–जगत् में कुछ पग–चिह्न बन चुके थे। भोपालपटनम् में तो साहित्य का कोई माहौल था नहीं, लेकिन बस्तर में साहित्य मनीषी के रूप में एक जो छवि मेरे मन में थी, वह केवल लाला जगदलपुरी की ही थी। रायपुर में मैं नियमित रूप से ब्राह्मणपारा स्थित नगर निगम के वाचनालय जाया करता था। वहाँ विशेष रूप से दैनिक समाचार पत्रों के रविवारीय परिशिष्टों में यदा–कदा लालाजी की कविताएँ और बस्तर की संस्कृति पर केन्द्रित शोधपरक लेख पढ़ने को मिल जाया करते थे। इनके माध्यम से ही मैं लालाजी से परिचित हो सका था।

भोपालपटनम् वापसी के बाद एक बार मैंने नयी कविता पर केन्द्रित परिचर्चा के लिये लालाजी को एक पत्र लिखा। व्यक्तिगत परिचय न होने के बावजूद एक सप्ताह के भीतर ही लालाजी के विचार डाक से प्राप्त हो गये। मेरी खुशी का ठिकाना न रहा। उसके बाद उनसे पत्र व्यवहार कई प्रसंगों में हुआ। उनका आत्मीय व्यवहार मेरे जैसे नवोदित के लिये प्रोत्साहनकारी था। 1981 में मैं जगदलपुर गया। यद्यपि 1972 से 1975 तक बस्तर हाईस्कूल में पढ़ाई के वक्त मैं जगदलपुर में ही रहा, परंतु उस समय साहित्य–लेखन से मेरा कोई संबंध नहीं था, इसलिये साहित्य से जुड़े लोगों के प्रति न तो मेरा कोई आकर्षण था और न ही उनके बारे में जानने की जिज्ञासा। यही कारण रहा कि मैं जगदलपुर में रहते हुये भी लालाजी से तब परिचित नहीं था। दोबारा जगदलपुर आने से पहले पत्रों के माध्यम से हम दोनों के बीच एक रिश्ता बन चुका था। इसलिये जब मैं डोकरीघाट पारा स्थित उनके निवास पर पहली बार उनसे मिला तो कोई अपरिचय का भाव हम दोनों के मन में नहीं था। वे मुझसे पिता की तरह मिले।

मैं एक साल जगदलपुर में रहकर फिर भोपालपटनम् लौट गया। लेकिन इस अवधि में लालाजी से रिश्ता अत्यन्त प्रगाढ़ हो चुका था। लालाजी रोज शाम को नियमित रूप से टहलने निकलते थे। जगदलपुर में रहते हुए मैं भी उनकी इस दिनचर्या में सहभागी हो गया था। हम दोनों विभिन्न विषयों पर चर्चा करते हुए किसी एक दिशा में निकल पड़ते थे। ऐसी चर्चाओं के बीच गुण्डाधूर पर केन्द्रित नाट्य–लेखन की योजना बनी। भोपालपटनम् में मैंने यह नाटक पूरा किया। वहाँ जाकर मैंने गाँव में साहित्य और संस्कृति के लिये आधार भूमि तैयार करने का कार्य शुरू किया। कुछ मित्रों को जोड़कर ''पल्लव साहित्य समिति'' गठित की। उसके माध्यम से एक कवि सम्मेलन का आयोजन किया। मेरे आमंत्रण पर लालाजी सहित श्री रऊफ़ परवेज़, श्री गनी आमीपुरी आदि मेरे आत्मीय रचनाकार प्रसन्न भाव से भोपालपटनम् पहुँचे। हम मित्रों ने मिलकर यथाशक्ति आयोजन को भव्य बनाने का प्रयास किया था। मेरे गाँव में साहित्य का यह पहला आयोजन था। इसलिये लोग इसे जिज्ञासा और आश्चर्य के भाव से देख रहे थे। गाँव के लिये यह एक नया अनुभव था। रऊफ़ साहब के सुमधुर कंठ और लालाजी की भावपूर्ण कविताओं ने लोगों को आनंद से अभिभूत कर दिया। लालाजी भी मरुस्थल में फूटते काव्यांकुर के स्फुरण को देखकर आनंदित थे। उन सभी को यह यात्रा सुखकर लगी।

एक और प्रसंग में लालाजी भोपालपटनम् में आयोजन के केन्द्रबिन्दु बने। प्रगतिशील लेखक संघ की भोपालपटनम् इकाई की ओर से ''प्रसंग लाला जगदलपुरी'' का आयोजन किया गया। उनकी रचनाधर्मिता को केन्द्र में रखकर काफी गंभीर विमर्श किया गया। लालाजी का रचनापाठ भी हुआ। वे बहुत खुश थे। उन्हें लगा कि अपने अंचल के वरिष्ठ रचनाकारों पर चर्चा के आयोजन की एक नयी परंपरा का बीज भोपालपटनम् में बोया गया है। उनकी इच्छा थी कि यह बीज अंकुरित और पल्लवित हो। साहित्य आयोजनों के संबंध में लालाजी का मार्गदर्शन मुझे बराबर मिलता रहा है। इसी श्रृंखला में पल्लव साहित्य समिति की ओर से लालाजी के संपादन में ''हम सफ़र'' नाम से एक सहयोगी कविता संग्रह प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में तब के चर्चित रचनाकार सर्वश्री बहादुरलाल तिवारी, गनी आमीपुरी, स्वराज्य करुण के साथ मैं भी शामिल था। इसके लोकार्पण समारोह में भी लालाजी भोपालपटनम् आये। वे जब भी आते मेरे घर में एक उत्सव का माहौल होता। मेरा परिवार उनका बहुत सम्मान करता था।

उस समारोह के बाद लालाजी के साथ हम भद्रकाली संगम भी देखने गये। इन्द्रावती और गोदावरी जैसी बड़ी नदियों का मिलन बिन्दु देखकर वे अभिभूत थे। गोदावरी के नीले और इन्द्रावती के गेरुए जल के प्रवाह को उन्होंने अपनी नज़र से देखा और बाद में उस पर एक सुंदर लेख लिखा, जो उनकी प्रसिद्ध पुस्तक **''बस्तर इतिहास एवं संस्कृति''** में संकलित है।

लाला जगदलपुरी जी की पुस्तक **''बस्तर इतिहास एवं संस्कृति''** के प्रकाशन की भी अलग कहानी है। मैं आदिम जाति कल्याण विभाग के वन्या प्रकाशन की मासिक बाल पत्रिका ''समझ–झरोखा'' का संपादक होकर भोपाल आ गया था। उन दिनों मूर्धन्य कवि डॉ. देवेन्द्र दीपक मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी के संचालक थे। वे जगदलपुर में रह चुके थे। लालाजी के साथ उनका आत्मीय रिश्ता भी था। चर्चा के दौरान लालाजी के लेखन को सम्मानजनक प्रकाशन प्रदान करने की बात हुई। मैंने

लालाजी से अपने सारे बस्तर संबंधी लेख पाण्डुलिपि के रूप में मेरे पास भेजने का अनुरोध ा किया। मैंने उन्हें प्रासंगिक चित्रों सहित पुस्तक की दृष्टि से संयोजित कर अकादमी को दे दिया। पुस्तक के अंतिम प्रूफ वाचन के संदर्भ में लालाजी भोपाल आये और मेरे निवास पर ही रहे। वह पुस्तक छपी और बहुत चर्चित हुई। उस प्रकाशन से लालाजी को अपार संतोष हुआ। उसके बाद राष्ट्रीय प्रकाशन मंदिर, लखनऊ से **'बस्तर की लोकोक्तियों'** पर केन्द्रित एक पुस्तक के प्रकाशन का माध्यम बनने का सौभाग्य भी मुझे प्राप्त हुआ। लालाजी अक्सर चर्चा में इन पुस्तकों के प्रकाशन का श्रेय मुझे देते रहते थे, जबकि मुझे मालूम है कि लालाजी कि ये पुस्तकें अगर वे अपने स्तर से भी किसी प्रकाशक को देते तो वह प्रसन्न ही होता।

लालाजी एक सेमीनार के प्रसंग में भी भोपाल आये और कुछ दिन मेरे परिवार के साथ रहे। उन्हें मेरे घर में अच्छा लगता था और हमे उनका साथ। हम जब कभी मिलते, केवल साहित्य–चर्चा ही करते। उनका मन और किसी चर्चा में रमता भी नहीं था। मुझे भी उनके साहित्यिक अनुभव सुनने में जहाँ आनंद आता, वहीं ज्ञानवर्द्धन भी होता।

लक्ष्मीनारायण पयोधि
एफ 83/54, तुलसी नगर,
भोपाल–462003 (म.प्र.)
मो : 09424417387
E-mail : payodhiln@gmail.com

लालाजी एक तपस्वी साधक थे। मैं अक्सर अपने मित्रों से चर्चा करते हुए उन्हें दण्डकारण्य का दाण्ड्यायन कहा करता था। दाण्ड्यायन ऋषि थे और लालाजी भी। लालाजी ने छंद की साधना की थी। छायावाद के समय प्रारंभ हुई उनकी काव्य–साधना समय के साथ अपने को समृद्ध करती रही है। समकालीन कविता के साथ–साथ उन्होंने ग़ज़ल–विधा को भी साध लिया था। उनका ग़ज़ल संग्रह **'मिमियाती ज़िदगी, दहाड़ते परिवेश'** हिन्दी ग़ज़ल की अन्यतम कृति मानी गयी है। एक बार लालाजी ने उस पुस्तक पर प्राप्त प्रतिक्रियाओं का पुलिंदा मेरे सामने रखा था। मुझे उनमें से डॉ. कुँवर बेचैन की प्रतिक्रिया आज तक याद है, जिसमें उन्होंने लिखा था कि **"हिन्दी में ऐसी ग़ज़ले कहना आपके ही बूते का काम है।"** सचमुच लालाजी की संवेदना और अभिव्यक्ति सबसे अलग और प्रभावी थी। एक बार मैंने अपने मन से उनके तमाम गीतों को एक रजिस्टर में संकलित करना शुरू किया था। मुझे उन गीतों में अनेक ऐसे मिले जो छायावादी सृजन कर्म के श्रेष्ठ उदाहरण थे। मैं उनसे कहा भी करता था कि इन गीतों का संग्रह अब तक क्यों नहीं आ पाया। मुझे प्रसन्नता है कि एक गीत संग्रह उनके जीवन के अंतिम कालखण्ड में **'गीत धन्वा'** नाम से प्रकाशित हो चुका है। मुझे इस बात की भी प्रसन्नता है कि उनके जीवन काल में ही बस्तर विश्वविद्यालय ने उन्हें डॉक्टरेट की उपाधि से सम्मानित किया। मैं अपने बड़े भाई हरिहर वैष्णव को भी साधुवाद देना चाहता हूँ कि उन्होंने न केवल लालाजी के रचनाकर्म पर पुस्तक संपादित की बल्कि उनकी स्मृति को चिरस्थाई बनाने के लिये भी अनेक उपक्रम किये।

आज लालाजी नहीं हैं, लेकिन बस्तर की साँसों में उनके नाम की गूँज है। उनकी रचनाओं में बस्तर धड़क रहा है। उनका ऋण बस्तर कभी नहीं चुका पायेगा।

लाला जगदलपुरी : सहज व्यक्तित्व के धनी साहित्यकार

लाला जी से मेरी पहली मुलाकात हुई तब वे पचपन के थे और मैं बचपन में। उन दिनों जगदलपुर एक बड़ा कस्बा था जो धीरे–धीरे शहर का आकार ले रहा था। प्रतापगंज मोहल्ले में पान वाले गुरू की दुकान से लगभग लगी हुई गनी आमीपुरी की दुकान थी, जहां वे कपड़ों पर इस्तरी करते थे। अपने कपड़े इस्तरी कराने मैं भी उनकी दुकान पर जाया करता था। गनी आमीपुरी उर्दू और हिन्दी में बेहतरीन रचनाएं भी किया करते थे। लालाजी अक्सर उनकी दुकान पर आते थे। हर रोज शाम 4.30 के बाद लंबी धोती का छोर पकड़े और बांये हाथ में छाता लिये लालाजी जगदलपुर की गलियों में विचरण करते थे। कई बार ऐसा होता था कि गनी आमीपुरी की दुकान से वे सीधे विश्वास हॉटल में समोसे और आधी चाय का आनन्द भी लिया करते थे। कई मौके पर गनी आमीपुरी और मैं उनके साथ होते थे। लालाजी कभी–कभी बिनाका होटल के समोसे पंसद करते थे तो कभी प्रेमजी भाई की दुकान से गांठिये और चाय का शौक पूरा करते थे।

1975 में भारत सरकार समाज कल्याण शिक्षा मंत्रालय ने एक काव्य रचना प्रतियोगिता रखी उसमें प्रतियोगियों की कविता की जांच पड़ताल लालाजी, जगदलपुर ने ही की थी, जिसमें मैं अव्वल रहा। तब तक लालाजी से कोई विशेष जान पहचान नहीं थी। उन्हें दूर से देखकर ही प्रणाम कर लिया करता था। उनके व्यक्तित्व में भारी भरकम विद्वत्ता का समावेश था जबकि वास्तविकता में वे बहुत ही सरल सहज व्यक्ति के धनी थे।

धीरे–धीरे लालाजी से प्रगाढ़ता बढ़ती चली गई और प्रायः हर शाम को जगदलपुर की गलियां नापने एक साथी उन्हें मिल गया। हम घन्टों गलियों में घूमा करते थे। मेरे हम उम्र मित्रों को आश्चर्य होता था कि उम्र के इतने अंतराल के बावजूद भी उनके साथ कैसे निभ जाती है। लालाजी मेरे पिता के भी अच्छे मित्र बन गये। अक्सर वे हमारी दुकान पर आकर बैठते जहां मेरे पिता उन्हें अदरक वाली चाय पिलाया करते थे।

लालाजी के साथ घूमते–घूमते मैने मोती तालाब पारा के 'काला जल' का रहस्य जाना और गुलशेर अहमद शानी से मुलाकात किए बगैर ही उनके बारे में बहुत कुछ जानने लगा। इसी प्रकार धनंजय वर्मा जैसे ख्यातनाम आलोचक का रास्ता भी लालाजी ने मुझे दिखाया था। एक अरसे बाद जब मैं इन दोनों से मिला तो उनके व्यक्तित्व से काफी प्रभावित हुआ।

बस्तर के कई माटी पुत्र लालाजी की शुरूआती छांव में रहे जिन्हें उन्होंने बाद में बड़े साहित्यकार बनते देखा। बतौर साहित्यकार और विशाल व्यक्तित्व के धनी इंसान के रूप में वे छोटी सी झोपड़ी में डोकरीघाट पारा में पावर हाउस के पास रहा करते थे जहां बगल में राजाराम की बुलंद हवेली थी। कच्चे खपरैल की कच्ची मिट्टी की कुटिया मुझे अब भी याद है। मैं उनसे कहता, रहने के लिए पक्का मकान बनावा लें तो हंसकर टाल जाते। बस्तर के इस हिमालय को झोपड़ी में रहने से कोई गुरेज नहीं था। म0प्र0 के तत्कालीन मुख्यमंत्री स्व0 श्री अर्जुन सिंह हाल–चाल पूछने इसी झोपड़ी में आये तो बिखरी हुई किताबों के बीच एक साधारण सी चारपाई पर बैठे उस बुजुर्ग को पाया। उन्होंने लालाजी की प्रशंसा की। उनकी विनम्रता से प्रभावित हुए। उन्होंने लालाजी से इच्छा पूछी तो उन्होंने कहा सरस्वती पुत्र की क्या इच्छा हो सकती है।

लालाजी ने श्रीराम पाठशाला में प्रारंभिक तौर पर अध्यापन किया और बाद में चितालिया बंधुओं के बच्चों को घर में ट्यूशन पढ़ाया करते थे। फ्रीलांसर पत्रकार के रूप में फक्कड़, औघड़, निर्भीक और बेबाक बयानी के लिये वे हमेशा मशहूर रहे। बड़े से बड़े दबाव के आगे वे कभी नहीं झुके, जीवन भर कट्टर स्वाभिमानी रहे। कभी किसी से मांगा नहीं। जून 1984 तक जब तक मैं जगदलपुर में रहा उनसे निरन्तर मुलाकातों का दौर लगातार चलता रहा। जब मैं तरूण साहित्य समिति का सचिव था तब वे प्रायः गोष्ठियों की सदारत किया करते थे। 'उद्गम साहित्य समिति' के कार्यक्रमों में भी उनसे अक्सर मुलाकात हो जाती थी। 1970 के दशक में प्रगतिशील लेखक संघ के सम्मेलन में कैफी आजामी जगदलपुर आये तो लालाजी ने मंच पर महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, उसी समय ख्वाजा अहमद अब्बास जगदलपुर आये थे शाम को श्री अवध प्रसाद शर्मा के घर पर एक संगोष्ठी रखी गई थी।

1984 के बाद मैं जब भी जगदलपुर जाता तो उनसे जरूर मुलाकात होती और घंटो बैठक। सुबह शाम वे दुकान आते और हम साथ में जगदलपुर, जो अब एक शहर हो चुका था, की गलियां नापते।

लालाजी ने बस्तर के बदलते स्वरूप को अपनी आंखों से देखा। जगतूगुड़ा को जगदलपुर बनते देखा और चक्रकोट से बस्तर रियासत की राजधानी को जगदलपुर आते देखा।

उन्होंने बस्तर की आदिम जनजातियों को बहुत करीब से देखा उनका जीवन, संस्कृति, लोकगीत, लोक कथायें, सुख–दुख उनकी रचनाओं में रच बस गये थे। परम्परागत आदिम जनजाति की जीवन शैली और अंगड़ाई लेकर 20वीं

से 21वीं सदी की ओर बढ़ रहे बस्तर के अर्न्तद्वन्द को उन्होंने भली भांति जाना और परखा। बस्तर में सरई और सागौन के पेड़ों की कटाई में स्थानीय लोगों के शोषण और कदम–कदम पर उनके साथ होने वाले अन्याय को देख कर कभी चुप नहीं बैठ पाये। उन्होंने रचनाओं में इसे अभिव्यक्त भी किया। 'मिमियाती जिन्दगी और दहाड़ते परिवेश' काव्य संग्रह में उन्होंने इस पीड़ा को बहुत बारीकी से उकेरा। उनके बयान बहुत सरल और आसानी से समझ में आने वाले होते थे। एक जगह उन्होंने लिखा है– **"वक्त बेहद खराब रे सुग्गे, थोथा इंकलाब रे सुग्गे"**

त्रिलोक महावर
आयुक्त निवास,
गांधी चौक, अंबिकापुर,
जिला–सरगुजा (छ0ग0)
पिन – 497001
e mail -
tmtcm6@gmail.com

बस्तर की धरती पर बैलाडीला को रौंदकर लौह अयस्क निकाले जाने की घटना हो या बस्तर के तत्कालीन महाराजा का गोली कांड या फिर वर्तमान में बारूद से डरे सहमें बस्तर का दर्द उन्होंने अपनी रचनाओं में बखूबी उतारा है। अमावस की रात में अपने दर्द को उन्होंने इस तरह उकेरा है– **"दर्द जब हद से गुजर जाता है बोझ आंखों में उतर जाता है"**

लालाजी कलम के धनी थे उन्होंने गजलें लिखी, गीत गाए, नई कविता का पाठ किया। निबंध आलोचनाएं और नाटक लिखे, मुहावरा एवं लोकोक्तियों को संकलित किया, जनजाति जीवन और घटनाओं पर तथा बस्तर के इतिहास पर उन्होंने किताब लिखी। बस्तर के साहित्य, संस्कृति, कला, लोक जीवन को बस्तर से बाहर पहचान दिलाई। वे एक अच्छे कहानीकार भी थे।

लालाजी के लेखन की सबसे बड़ी बात थी कि उन्होंने खटिया गिरदावरी नहीं की। बस्तर अंचल के कोने–कोने में गये और लोगों में रच बस कर बहुत कुछ समझा और फिर अपनी रचना में इसे जस का तस उड़ेल दिया। बस्तर के बारे में लालाजी को इतनी जानकारी थी वह शायद किसी और को हो। भाषा, कला, साहित्य, जीवन दर्शन, संस्कृति और न जाने क्या–क्या सब कुछ का नाम था लाला जगदलपुरी! बस्तर के प्रसिद्व साहित्यकार स्व0 रघुनाथ महापात्र जी ने कहा था कि यदि बस्तर देखना हो तो लालाजी से मिलो।

उनके घर पर बस्तर के बारे में शोध करने के इच्छुक लोगों के अलावा जाने माने लोगों का तांता लगा रहता था। उन्होंने किसी को निराश नहीं किया। लोग उनकी जानकारियों को बिल्कुल प्रमाणिक मानते थे। लालाजी ने बाल साहित्य का सृजन किया। प्रतापगंज में तरूण साहित्य समिति ने बाल कवि सम्मेलन का आयोजन किया तब लालाजी ने इसका बेहतर संयोजन किया। उनके छोटे भाई केशव को लिखने के लिए प्रेरित किया। उनके अनेक कहानी संग्रह प्रकाशित हुये।

1950 के दशक में जगदलपुर ने एक बहुत बड़ा साहित्य संगम देखा जिसमें लालाजी सहित देश भर के नामी साहित्यकारों ने शिरकत की। पूर्व महाराजा स्व0 प्रवीर चन्द्र भंजदेव के प्रयास से यह आयोजन हुआ था।

लालाजी के लगभग 75 वें जन्म दिवस के अवसर पर मैंने उन पर एक लघुवृत्त चित्र का भी निर्माण किया **"माटी के गीत चिड़ियों के छन्द"** जिसे देखकर लालाजी बहुत प्रसन्न हुए थे। उसकी शूटिंग के लिए बहुत मुश्किल से तैयार हुए थे। दलपत सागर की ऊंचे मेडनुमा बांध पर चलते हुए तो कभी महादेव घाट में इंद्रावती नदी के घाट पर सीढ़िया चढ़ते हुए तो कभी आसना के जंगल में घूमते हुए उन्होंने अपने साहित्य सृजन की प्रक्रिया एवं रचना कर्म की विस्तार से व्याख्या की।

जगदलपुर के आकाशवाणी दूरदर्शन केन्द्र ने लालाजी की साहित्य साधना का भरपूर लाभ उठाया। रचना कर्म में किसी से समझौता न करने वाले लालाजी कभी–कभी संस्थाओं के अफसरनुमा लोगों से भिड़ जाया करते थे और अपनी बात मनवा कर ही दम लेते थे। लालाजी करूणा के धनी थे। यह करूणा उन्हें अपनी माता से मिली थी जिन्हें वे बहुत स्नेह करते थे। उनका बाल सुलभ हृदय उनके बाल साहित्य में झलकता है। आत्मीय लोगों से वे जितने प्रेम से मिलते उसकी कोई मिसाल नहीं थी। लालाजी साहित्य साधना के लिये अनेक पुरूस्कारों से सम्मानित किये गये। उन्होंने इन सम्मानों को भार से अपनी सहजता नहीं खोई। उन्हें उत्तरप्रदेश में 'अक्षर आदित्य' सम्मान से भी नवाजा गया। अनेक साहित्यिक संस्थाओं ने उन्हें सम्मानित किया। सरकारी और गैर सरकारी सम्मान उनकी साहित्यिक साधना के सामने बौने थे।

लालाजी से अंतिम बार मुलाकात उनके देहावसान के करीब डेढ़ महीने पहले हुई थी। तब मैंने लालाजी से काफी लंबी बातचीत की थी। फोटो सेशन, इंटरव्यू भी दर्ज किया। इसके पहले दो–तीन बार प्रसिद्ध गजलकार रऊफ खान परवेज के साथ भी लालाजी से लंबी मुलाकातें भी हुई। वर्तमान में हरिहर ने उनके रचनाओं को समग्र रूप से प्रकाशित कराने का कार्य किया है लेकिन अब भी बहुत सा साहित्य प्रकाशन के लिये बाकी है।

आज लालाजी नहीं हैं केवल उनकी यादें शेष हैं। जब भी जगदलपुर आना होता है तो ऐसा लगता है इन गलियों में घूमते हुए अकस्मात ही किसी मोड़ पर वे मिल जायेंगे।

जिनके सिर पर धूप कड़ी..... दुनिया उनकी बहुत बड़ी

हिमांशु शेखर झा
कुंवर बाड़ा, विजय वार्ड, जगदलपुर
जिला–बस्तर
मो.–09424285268

लालाजी पर कुछ लिखना, मेरे लिए वैसा ही है जैसा कि अपने परिवार के किसी बुजुर्गवार के बारे में याद करना.... जब मेरे आत्मीय सम्पादक 'बस्तर पाति' ने मुझसे संस्मरण के लिए कहा तो न जाने कितनी ही यादें जो झील से मन की तलछटी में पैठ गईं थीं.. उभरने लगीं–तल पर..!

दरअसल, हम बहुत 'छोटे' हैं... लाला जगदलपुरी पर कुछ कहने–लिखने की हैसियत नहीं हमारी. ... पर हां घरेलू जैसे संस्मरण कई हैं...मेरे पिताश्री प्रो.(डॉ.) बी.एल.झा, चाचा श्री शंभुनाथ एवं बाबू चाचा यानि डॉ. के.के.झा से बड़ी निकटता रही लालाजी की..! लिहाज़ा मैं अपने छुटपन से उन्हें हमारे घर आते–जाते कविताएं सुनते–सुनाते और यहां तक कि लिखते–पढ़ते भी देखा करता था...उस वक़्त बस्तर संदेश–नव संदेश अर्द्धसाप्ताहिक अखबार हमारे घर से ही निकलता था...यह बात होगी 72 के आसपास की...। लालाजी सम्पादन में सहभागिता देते... ।उनकी हस्तलिपि और ख़ासकर उनके हस्ताक्षर मुझे बहुत चौकाते..! छोटा था...तो चकित रह जाता...और उनके हस्ताक्षर की प्रतिकृति उन्हें ही दिखाता...वे स्नेह से देखते और ठहाका लगाते....कहते 'बड़े होकर तुम भी कवि बन जाना...फिर ऐसा दस्तख़त कर लेना।'

उस वक्त हमारा जगदलपुर भी क़ाफी छोटा था...पर...पर यहां लोगों के दिल ख़ूब बड़े थे...शहर एक बड़े से परिवार की मानिन्द हुआ करता और हम बच्चे किन्हीं को दादाजी, चाचा, भैया, दीदी, परिवार–परिजनों के संबोधन से ही जानते.....। इस कस्बे में उन दिनों 'बड़े लोग' रहते थे अब....शहर बढ़ गया...पर लोग...?

मुझे याद है लालाजी की पहली किताब 'हल्बी पंचतंत्र' के नाम से छपी थी...'बस्तर प्रिंटिंग प्रेस' में–जो डॉ. के.के.झा का ही प्रेस था उन्होंने पंचतंत्र का हल्बी अनुवाद करने का सुझाव लालाजी को दिया था...इसकी कंपोज़िंग और ट्रेडल प्रेस पर प्रिंटिंग मुझे आज भी याद है...मुझे याद है कि इसकी बाइंडिंग के बाद कटिंग में थोड़ी चूक रह गई और सैकड़ों पुस्तकें थोड़ी आड़ी कट गईं थीं...जिसे लेकर लालाजी और झा'साब ख़ूब हंसी–मज़ाक भी करते...।

एक और वाक़या–सन् 83 की बात होगी...सुबह 10 बजे के आस–पास, मैं घर के ऊपरी कमरे में पढ़ाई कर रहा था कि नीचे मैंने किसी की पुकार सुनी 'सर...सर...सर हैं क्या हमारे ?'

मैंने नीचे उतरकर दरवाज़ा खोला...तो जो सज्जन सामने थे–उन्होंने कहा–'मैं...गुलशेर...शानी' मैंने तुरंत उन्हें प्रणाम किया और बताया कि पिताश्री तो रायपुर गये हैं..तो उन्होंने पूछा–'तुम राजू हो न..? चलो मेरे साथ 'कवि निवास' चलते हैं।'...और हम चल पड़े...हमारे घर के पीछे की सड़क पर करीब फर्लांग भर की दूरी पर ही–बस्तर ही नहीं देश के महाकवि का निवास 'कविनिवास' डोकरीघाट पारा...!

जल्द ही वह पल आ गया जो मुझे आज भी रोमांच से भर देता है। मेरी आंखों के सामने ऋषितुल्य कवि और बेहद संवेदनशील कथाकार, हमारे लालाजी एवं शानी; जिन्हें लालाजी ने गले ही लगा लिया था। काफ़ी देर बैठने का अवसर मिला! बीच–बीच में दोनों के ठहाके...कुछ बातें मेरी समझ में आतीं.....कुछ नहीं! अद्‌भुत अनुभव था यह।

आपको शायद ही मालूम हो कि शानीजी को जहां मेरे पिता ने पढ़ाया था वहीं डॉ.के.के.झा घनिष्ठ मित्र थे; शानी जी–मेरे पिता को 'सर' ही कहा करते थे...और डॉ.के.के.झा को 'बाबू'...यह घरेलू नाम था–डॉ.के.के.झा का। ख़ूब आत्मीय संबंध थे–इन सबमें।

यादों की गठरी खुल ही गई तो लालाजी की एक और बात बताता चलूं...यह जहां तक सन् 90 की बात होगी...17 दिसम्बर आने को था...लालाजी सत्तर के हो जायेंगे..उन दिनों मेरे अभिन्न कविमित्र त्रिजुगी कौशिक भी मेरे घर के ठीक सामने रहने लगे थे...हमने तय किया कि लालाजी के इस जन्मदिवस पर कुछ नया किया जाये...हमने एक–एक कविता लिखी और छपने को भेज दी, 'अमृत संदेश' ने अपने साहित्यिक पन्ने पर बड़ी प्रमुखता से छापा, शीर्षक था–'लाला जगदलपुरी' और साथ थी–लालाजी की एक तस्वीर भी...! लालाजी ने भी ख़बर पढ़ी–और जब मुलाकात हुई तो कहा–'तुम लोग भी अच्छा लिख रहे हो..!' फिर हंसकर कहा–'मुझ पर ही लिख दी..तुम लोगों ने कविता..!' हमने आशीष लिया तो वे भावुक हो गये थे!

एक और वाक़या लालाजी को अधिकांश ने पांव–पांव, नित्य नगर परिक्रमा करते देखा था...किन्तु उन्हें शहर के बाहर लेकर गये डॉ. सुरेश तिवारी हमारे कविमित्र...तिवारीजी तोकापाल में रहते हैं। उन्होंने एक रोज़ मुझसे कहा कि लालाजी को वे अपने घर निमंत्रित करना चाहते हैं...मैं इसमें उनका साथ दूं....मैंने कहा पता नहीं शायद टाल दें...फिर हमने तय किया कि बंशीदादा (प्रसिद्ध चित्रकार श्री बंशीलाल विश्वकर्मा) भी साथ रहें तो शायद लालाजी मान जाएं। यह युक्ति सटीक थी...लालाजी, बंशीदादा और मैं दिन भर सुरेश भाई के तोकापाल निवास में रहे...श्रीमती तिवारी का आत्मीय आतिथ्य और शाम तक कुछ साहित्यिक

तो कुछ घरेलु बातें...बुजुर्गों का आशिर्वाद–स्नेह...सारा दिन स्मरणीय रहा।

यादें और भी हैं ढेरों...पर अब ठहरता हूं.. कभी मौक़ा मिला तो महाकवि बाबा नागार्जुन के हमारे घर पर लंबे समय तक प्रवास के दौरान इन विभूतियों से संबंधित बातें बताऊंगा...! अब हमारे लालाजी को विनम्र भावांजलि देते हुए लेखनी को विराम दे रहा हूं...स्मृतियों को नहीं...!

संस्मरण–श्रीमती मोहिनी ठाकुर

एक विलक्षण व्यक्तित्व

श्रीमती मोहिनी ठाकुर
ग्राम–लामनी
तहसील–जगदलपुर
जिला–बस्तर, छ॰ ग॰
मो.–08718811825

आकाश से ऊँचे विचारो को सहेजे, सागर से गहरे व्यक्तित्व वाले थे लालाजी, जो हमेशा मेरे पिता तुल्य रहे, मुझे फक्र है इस बात का कि उन चंद रचनाकारों में से मैं भी एक हूं जिनके लिए बड़ी सहजता से उन्होंने भूमिका लिखना स्वीकार किया। यही नहीं मेरे कविता–संग्रह के लिए अपने आशिर्वचन के साथ–साथ जो स्नेह मुझे दिया वह मेरा बड़ा संबल बना, ऐसे समय में, मुझे जब इसकी निहायत जरूरत थी। मुझे सबसे ज्यादा प्रभावित करता था उनका सादापन, सीधा और सच्चा मन। जब उनका सानिध्य मिला उनके ज्ञान सागर से अंजुरी भर–भर ज्ञान बटोरती रही। उनके पास बैठे हुए घंटों गुजर जाते पता ही नहीं चलता। लेखन की बारीकियों पर, कविता की बानगी पर, बाल कविताओं पर वृहत् चर्चा होती और इन विषयों पर उनसे जो कुछ सीखा, पाया वह मेरी बड़ी उपलब्धि ा रही है। उनका मार्गदर्शन मेरे लिए सदैव प्रेरणादायक रहा।

बड़ा अच्छा लगता जब वो अपनी पुस्तकों में से कोई पंक्तियां पढ़कर सुनाते और मुझे पुस्तकें भी दिया करते, वे सभी पुस्तकें मेरे संग्रह भी अमूल्य निधि के रूप में हैं। और जिसे मैंने बहुत सहेजकर रखा है वह है उनकी बड़े अपनेपन से लिखी चिट्ठी! जिसमें उन्होंने मुझे ''प्रिय बेटी'' लिखकर संबोधित किया है यह उस पत्र के जवाब में उन्होंने लिखा था जब मैंने उन्हें पत्र द्वारा अपने कविता संग्रह ''नीम अंधेरे'' के लिए भूमिका लिखने का अनुरोध किया था (उन दिनों मै रायपुर में थी) अपनी सभी अविस्मरणीय यादों के साथ वे हमारे साथ हमेशा रहे हैं और रहेंगे।

बस्तर पाति प्राप्त करें–

जगदलपुर– (1)अनुराग बुक डिपो, सिरासार चौक (2)मिश्रा बुक डिपो, नया बस स्टैण्ड (3)महावीर बुक डिपो, हाई स्कूल रोड (4)नरेन्द्र न्यूज एजेन्सी, पुराना बस स्टैण्ड ***कोण्डागांव***–(1)अमित बुक डिपो, बस स्टैण्ड के पास ***कांकेर***–(1)विजय बुक डिपो, पुराना बस स्टैण्ड के पास ***नारायणपुर***–(1)स्वामी स्टेशनरी, बस स्टैण्ड के पास ***सुकमा***–(1)दंतेश्वरी इंटरप्राइजेस, बस स्टैण्ड के पास

बिलासपुर–(1)रेल्वे बुक स्टॉल ***रायपुर***–(1)पारख न्यूज एजेन्सी, पुराना बस स्टैण्ड (2)अशोक बुक सेलर, जय स्तम्भ चौक (3)रामचंद बुक डिपो, पुराना बस स्टैण्ड (4)क्रास वर्ड, कलर्स मॉल, पचपेढ़ी नाका (5)रेल्वे बुक स्टॉल ***भाटापारा***–(1)रेल्वे बुक स्टॉल ***भिलाई***–(1) श्री राजेन्द्र जैन, के.पी.एस. स्कूल के पास, नेहरू नगर ***दुर्ग***–(1)खेमका बुक डिपो, रेल्वे स्टेशन के पास ***दल्ली राजहरा***–(1)राकेश पान पैलेस, बस स्टैण्ड (2)मनोज पान पैलेस, बस स्टैण्ड

इंदौर–(1)जैन बुक स्टॉल, सरवटे बस स्टैण्ड (2) श्री इंदौर बुक डिपो, नवनीत प्लाजा, ओल्ड पलासिया ***जबलपुर***–(1)गंगा बुक डिपो, श्याम टाकीज के पास (2) साहू बुक डिपो, श्याम टाकीज के पास (3)जनता न्यूज एजेन्सी, श्याम टाकीज के पास ***करेली***–(1)श्री बालचंद जैन, मेन रोड ***सीहोर***–(1)सतीश जनरल स्टोर्स, किथौला बाजार ***भोपाल***–(1)वैरायटी बुक हाउस, जी. टी.बी काम्पलेक्स, टी.टी.नगर

नागपुर–(1)पुस्तक संसार, धानवते चैम्बर्स, सीताबर्डी

छपरा–(1)मोहन बुक्स एण्ड न्यूज एजेन्सी, रोडवेज बस स्टैण्ड ***पटना***–(1)मुरारी प्रसाद बुक सेलर, न्यू मार्केट ***रांची***–(1)माडर्न बुक डिपो, मेन रोड ***पुर्णिया***–(1)लालमुनी बुक स्टॉल, श्री लालमुनी शाह, आर.एन.शाह चौक

बस्ती–(1)शिशिर द्विवेदी, उपसंपादक मीडिया विमर्ष, बस्ती उत्तरप्रदेश मो.–09451670475

संस्मरण–डॉ. सुरेश तिवारी

''जरूर चलूंगा आपका घर है न वहाँ. – लालाजी

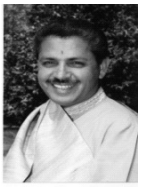

डॉ.सुरेश तिवारी
मेन रोड, तोकापाल
जिला–बस्तर
मो.–09425596784

लगभग अचानक ही थम गये थे कदम। शाम का समय– रंग और तुलिका जिन सधे हाथों में संगीत वाद्य की तरह थिरकने लगती है, उनके साथ ही शब्दों के अर्थ और भाव के साथ खिलखिलाने वाली विभूति– अद्भुत संगम और संयोग, एक साथ बैठे– मुस्कराते, परस्पर अंतरंगता बांटते, बंशीलाल विश्वकर्मा जी और लाला जगदलपुरी जी। रंग और संस्कृति कक्ष 'आकृति' के बाह्य भाग में सुख–दुख की बातें करते, जीवनानुभव सुनाते, राह चलते लोगों का ध्यान बरबस अपनी ओर खींच लेते।

एक क्षण मन में आया कि क्यों इनकी अंतरंगता में बाधा बनूँ। पर ये बावरा मन, इनके साथ दो पल बिताने का लोभ संवरण नहीं कर पाया, अचानक ही कदम थम गये, और जा पहुँचा इनके सामने। चंद लमहे भी नहीं लगे इन्हें अपनी अंतरंगता में मुझे शामिल करने में। बातों ने करवट ली और आगे की चर्चा साहित्यिक रूप में ढलती चली गई। बीती बातें, अतीत की यादें और मैं, मूक श्रोता तरह बहुत कुछ जाना उस दिन उनके अपने बारे में, शहर जगदलपुर की साहित्यिक गतिविधियों के बारे में। लाला जी बड़ी सहजता से अपनी बातें कह रहे थे. बीच–बीच में अपनी काव्य पंक्तियाँ सुनाते जाते कब दो घंटे से भी अधिक समय बीत गया, इसका भान ही नहीं हुआ।

तभी मैने लाला जी से कहा– ''लाला जी, जगदलपुर से बाहर कहीं गये आपको कितना अरसा हो गया?''

लाला जी– ''पहले हम लोग साहित्यिक गतिविधियों में भाग लेने जाते रहते थे, अब शरीर थक चुका है, शहर की इन विथिकाओं में ही अब देश– विदेश की सैर कर लेता हूँ'' और उन्मुक्त ठहाका गूंज उठा।

''लाला जी, चलिये एक दिन तोकापाल रविवार की दोपहरी वहीं गुजारते हैं, आपकी कविता भी सुनने का अवसर मिलेगा।''

''जरूर चलूंगा आपका घर है न वहाँ चलिये विश्वकर्मा जी घुम कर आ जाएंगे।''

बंशीलाल विश्वकर्मा जी ने भी अपनी सहमति दे दी. आने वाले रविवार को तोकापाल जाना तय हो गया.

रविवार 12 नवंबर 2006 को जब मैं आकृति पहुँचा तो लाला जी, बंशीलाल विश्वकर्मा जी, सुरेश विश्वकर्मा जी और हिमांशु शेखर झा जी सभाकक्ष में बैठे हुए थे। बड़ी ही नाजुकियत से लाला जी को कार की पिछली सीट पर बिठा कर हम लोग तोकापाल पहुँचे। लाला जी कार से उतरते ही घर के सामने शिवालय देख कर नतमस्तक हो गये और बोल पड़े–'' वाह अति सुंदर'' मंदिर में विराजमान दिव्य प्रतिमाएँ, नारियल का पेड़, रंग–बिरंगे फूलों से भरी पुष्पवाटिका, कतारबद्ध मोगरा से भरा आँगन देख लाला जी ने कहा–''बहुत सकुन मिला यहाँ आकर'' घर की बहु के पाँव छूते ही आशीर्वाद की लंबी फेहरिस्त उनके मुख से उच्चारित होती चली गई। आँगन की गुनगुनी धूप में जब वे कुर्सी पर विराजे तो मानों मंदिर के सामने एक और दिव्य प्रतिमा विराजित हो गयी। चाय पीकर लाला जी उठे, वे अपने को रोक नहीं पाए और आँगन के उपवन में घूमने लगे। कभी पत्तियों को छूते, कभी चंदन के युगल वृक्षों को निहारते तो कभी फूलों की महक में खो जाते। आँगन में लगे नारियल, चीकू, करौंदा, काजू, अमरूद, आँवला, आम, चंदन के पेड़, रातरानी, नरगिस, चमेली, गुलाब, मोगरा, सेवंती, डहलिया, पत्तीदार क्रोटंस के पौधों को देख कर मानो उनका मौन संवाद मुखर हो उठा। बीच–बीच में काव्य पंक्तियाँ सुनाते जाते। आग्रह पर तस्वीरें भी खिंचवाते।

कब दोपहर हो गयी, समय बीतने का पता ही नहीं चला। हम सब भोजन करने बैठे। सामने परोसी हुई थाली देख कर कहने लगे–'' इतना सारा व्यंजन पर सबको थोड़ा– थोड़ा चखूंगा, तुमने मन से बनाया है ये सब बहु '' लाला जी भोजन करते समय तारीफ भी करते और आशीष भी देते जाते। भोजन के बाद फिर आँगन में मोगरा की कतार के पास सब बैठ गये, लाला जी ने कविताओं के साथ अपने अनुभव भी सुनाए। और हम सब मानो इस एक दिन को जीवंत करने में लगे थे। वापसी में आकृति के सामने जब लाला जी कार से उतरे तो उनमें जीवन का नव संचार हो गया था। लाला जी कह उठे ''मजा आ गया, मेरी उम्र के कुछ बरस और बढ़ गये।''

लाला जी का रचना संसार अद्भुत है, वे लोकमानस के कवि थे, उनकी कविताओं में क्लिष्टता का अभाव है, जो सामान्य पाठकों के लिए भी पठनीय तथा बोधगम्य है। उनकी रचनाओं की इसी सहजता और सरलता ने जटिल विषयों की गूढ़ता को भी आसान कर दिया है। वे आसपास घटित घटनाओं तथा दैनिक उपयोग की वस्तुओं को बिम्ब के रुप में जिस कुशलता के साथ प्रयोग करते हैं, उसका एक बेहतरीन नमूना उनकी कविता '' कुल्हाड़ी '' है। एक कवि ने लाला जी की कविताओं को माटी के गीत और चिड़ियों की छंद कहकर एक ही पंक्ति में उनके सारे गुणधर्मो को उजागर कर दिया।

व्यंजना उनकी भाषा की सबसे बड़ी शक्ति रही है, व्यंग्य को हास्य के साथ जोड़ देने पर उसकी धार कुंद हो जाती है किंतु लालाजी उन रचनाकारों में से हैं, जिन्होंने व्यंग और विडम्बना को एक युग्म के रुप में गढ़ा है। वे प्रकृति के प्रति जितने संवेदनशील हैं, विपर्ययग्रस्त समाज और राजनीति के साथ–साथ सामाजिक व्यवस्थाओं पर भी गहरी चोट करने में सफल होते है। आधुनिक जीवन की मूल्यहीनता को सहजता तथा निर्ममता के साथ अनावृत्त करने का दुःशासनी प्रयास भी उनकी रचनाओं को सशक्त स्वरुप प्रदान करती है।

वे मूलतः हिन्दी में अपनी रचना संसार का सृजन करते हैं, लेकिन जनभाषा हल्बी, छत्तीसगढ़ी तथा भतरी की काव्य रचनाएँ उनके बौद्धिक कुशलता की परिचायक है। पत्रकारिता का सफल प्रयोग भी उन्होंने किया। उनकी रचनाएँ देश की लब्धप्रतिष्ठ पत्र–पत्रिकाएँ पांचजन्य, मानवता, कल्याण, कादंबिनी, नोकझोंक, चांद, विश्वमित्र, सन्मार्ग, रंग, ठिठोली, राजस्थान पत्रिका, श्री वेंकेटश्वर समाचार, नई दुनिया, देशबंधु, युगधर्म, स्वदेश, अमृत संदेश, महाकौशल, शिशु, बालसखा, दण्डकारण्य समाचार पत्र में स्थान पाती रही हैं, वहीं उनकी प्रकाशित पुस्तकों में : हल्बी बोली में–हल्बी पंचतंत्र, प्रेमचंद चो बारा कहनी, बुआ चो चिठी मन, रामकथा, बस्तर की लोकोक्तियॉ, हल्बी, भतरी और छत्तीसगढ़ी कविताओं का संग्रह– आंचलिक कविताएँ, कविता संग्रह में–मिमियाती जिंदगी, दहाड़ते परिवेश, हम सफर, पड़ाव पॉच, लोककथा संग्रह में हल्बी लोक कथा, बस्तर की लोक कथाएँ,वनकुमार और अन्य लोक कथाएँ, बस्तर की मौखिक कथाएँ, बाल गीतों में– गीत हमारे, कंठ तुम्हारे, गज़ल संग्रह, बस्तर :इतिहास और संस्कृति, बस्तर :लोक एवं संस्कृति आदि रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं, वहीं अभी भी अनेक पांडुलिपियॉ प्रकाशन की राह देख रही है।

लाला जी के अद्भुत रचना संसार ने कई संस्थाओं को उनका सम्मान करने के लिए प्रेरित किया। लाला जी के प्रमुख सम्मान में धमतरी मंच में ' चंदैनी गोंदा ' द्वारा सम्मान, म.प्र. प्रगतिशील लेखक संघ जगदलपुर द्वारा सम्मान, अखिल भारतीय बाल साहित्यकारों के साथ कानपुर में सम्मान, छत्तीसगढ़ी भाषा प्रचार समिति रायपुर द्वारा सम्मान, पड़ाव प्रकाशन भोपाल तथा म.प्र. प्रगतिशील लेखक संघ भोपाल द्वारा अक्षर आदित्य सम्मान, बख्शी सृजनपीठ भिलाई द्वारा सम्मान तथा वर्ष 2005 में छत्तीसगढ़ राज्य द्वारा साहित्य का सर्वोच्च सम्मान से लाला जी को सम्मानित किया गया।

सरल, सौम्य व्यक्तित्व के धनी लाला जी बयानबे साल की उम्र तक भी सृजन सक्रियता के आधार पर साहित्य के क्षेत्र में अपना प्रतिमान स्वयं गढ़ते रहे हैं, नई पीढ़ी के लिए लाला जी का जीवन प्रेरणास्रोत है, उनके साधनामय जीवन को देख व्यक्ति स्वयमेव नतमस्तक हो जाता. आखिर लाला जी ने बड़े ही एकाकीपन के साथ 14 अगस्त 2013 को हम सबकी आँखों में आँसू देकर विदाई ले ली। उन्हें विनम्र श्रद्धांजलि।

स्मृति चित्रांकन : लाला जगदलपुरी

श्रीमती नवनीत कमल
शांतिनगर, जगदलपुर
जिला–बस्तर,
पिन–494001
मो.–09826514839

'बस्तर पाति' के पाठकों के लिए अर्न्तःमन से दो शब्द कहना चाहूंगी, जब मैंने सुना कि 'बस्तर पाति' का आगामी अंक स्व. लाला जगदलपुरी जी को समर्पित है, तो मैं अपने अतीत के उन पृष्ठों को पलटने के लिए विवश हो गई, आदरणीय लालाजी एवं उनसे जुड़ी हुई बातें एक रेखाचित्र की तरह जीवंत हो गई।

मैं कई वर्षों से अपने अंतस में निरन्तर उनकी स्मृति चित्रांकन को संजोये रही और आज अवसर पाते ही उस मूक अभिव्यक्ति को शब्द देने का प्रयास कर रही हूँ, इस अनुभव को अपने सौभाग्य एवं सबसे बड़ी प्रसन्नता का कारण भी मान रही हूँ कि मैं इतनी साधारण होकर, इतने असाधारण गरिमामय व्यक्तित्व के धनी, साहित्य साधक, सरस्वती पुत्र 'लाला जगदलपुरी जी' के लिए आत्मचिन्तन को शब्द रूप दे रही हूँ।

'लालाजी' से संबंधित स्मृतियों को जीवंत करने के के लिए अतीत के कुछ पन्नों को पलटना होगा.....86–87 की बात है, उस समय मैं 22–23 वर्ष की थी, उन दिनों आकाशवाणी जगदलपुर के 'आमचोगांव' कार्यक्रम के अन्तर्गत मेरी एक 'दोरली' कहानी प्रसारित हुई, इसे एक संयोग ही कहूँगी कि पूर्व घोषित कहानी वाचक उपस्थित नहीं हुए, और मुझे कहानी वाचन का अवसर मिला। मैं मूल निवासी कोन्टा जिला सुकमा छ.ग. हूँ– जो 'दोरली' बोली बाहुल्य क्षेत्र है, बाल्यावस्था से ही उन्ही जनजातियों के बीच रही, एवं हायर सेकेण्डरी शिक्षा पूर्ण की। तात्कालीन अज्ञानतावश, 'दोरली' बोलना, कहानी वाचन या लिखना आदि में रूचि महसूस नहीं कर पायी, इस बोली के महत्व को समझने में भी असमर्थ रही।

किन्तु बाल्यावस्था में सीखी हुई बोली को विस्मृत कर पाना कहाँ मुमकिन है, जब अवसर मिला तो मैं ''दोरली'' बोली में कहानी प्रस्तुत करी। हाँ तो उस प्रसारण को 'लालाजी' सुन लिए, और दूसरे ही दिन आकाशवाणी जाकर, मेरे बारे में पूछ–परख लिया, उस समय मैं सहा0शिक्षिका के रूप में शहर के ही प्रा0शा0 सुभाषचन्द्र बोस में पदस्थ थी, उन दिनों संचार के कोई तीव्रगामी साधन तो रहे नहीं, पोस्टकार्ड, लिफाफा, अर्न्तदेशीय पत्रों का जमाना था। एक दिन मुझे शाला के पते पर 'लालाजी' का लिखा हुआ एक पोस्टकार्ड मिला, जिसमें सुन्दर–स्वच्छ सुलेख में उन्होंने मेरी आकाशवाणी में प्रसारित 'दोरली' कहानी की प्रशंसा करते हुए निरन्तर रचना धर्म निभाने की सलाह देते हुए शुभकामनाएँ प्रेषित की थी।

लगभग एक माह बाद पुनः उनका एक और पोस्टकार्ड मिला, जिमसें वे लुप्त होती हुई बोली 'दोरली' को जीवंत रखने का अनुरोध किया, शुभकामनाएँ दी, निरन्तर लिखने की सलाह दी। पर मैं प्रभावहीन ही रही, कुछ अज्ञानतावश, कुछ विषय वस्तु की गरिमा को ना समझ पाने की भूल, और कुछ अपरिपक्व मानसिकता। (पाठकों से क्षमाप्रार्थी हूँ, कि मैं उन अमूल्य पत्रों को सुरक्षित भी नहीं रख पायी।)

अब आगे.....प्रातः कालीन शालेय समय था, हम सभी शिक्षक/शिक्षिकाएं स्टाफरूम में ही थीं, प्रधानअध्यापक महोदय कुछ चर्चा कर रहे थे, कि अचानक से एक दुबले–पतले, लंबे कद वाले, सामान्य सा धोती–कुरता पहने, पर मुख–मण्डल में ज्ञान की आभा और गरिमामयी व्यक्तित्व वाले व्यक्ति का प्रवेश हुआ, आते ही कहने लगे– 'अरे त्रिपाठी वो 'नवनीत कमल' कौन है बुलाओ ?' और मैं मन में उन्हें जानने की जिज्ञासा एवं अनावश्यक भय लिए आश्चर्यचकित सी देखने लगी, और सभी मुझे देख रहे थे फिर उनकी भी दृष्टि मुझ पर पड़ी, शायद मेरे हाव–भाव से ही वे समझ गए कि अमुक नामधारी मैं ही हूँ। वे मेरे करीब आए और कहने लगे– 'बेटी तुम लिखो। तुम कहानी– बहुत अच्छा पढ़ी हो, आगे भी प्रयास करो, दोरली बोली लुप्त होती जा रही है, उसे बचाओ अपना रचना धर्म निभाओ।' मेरे मन का जो भय था वो, दूर हो गया, मैं ध्यानपूर्वक उनकी बातें सुनने लगीं, प्र0अ0 महोदय ने उनका परिचय बताया, मैं प्रणाम करी, उनका आर्शीवाद मिला।

तत्पश्चात दोरली में तीन कहानियां लिखकर श्री हरिहर वैष्णव के पास भेजी जो 'बस्तर की लोककथाएं' के संपादक हैं, में वे कहानियाँ प्रकाशित हुई। दूसरे संस्करण में पुनः प्रकाशित हुई। इस तरह एक युग पुरूष साहित्यकार 'लाला जगदलपुरी जी' आज भी मेरे स्मृतियों में जीवंत हैं। उनका आशिर्वाद पाकर निरन्तर मुझमें सृजनात्मकता बनी रहे, प्रयासरत हूँ।

रचनाकार कृपया ध्यान देवें– आपकी रचना में हमारी संपादकीय टीम के द्वारा आवश्यक सुधार एवं शीर्षक परिवर्तन संभव है। समयाभाव के कारण इसके लिए अलग से पत्राचार संभव नहीं है अतः इसे अपनी स्वीकृति मानते हुए प्रकाशन हेतु रचनायें प्रेषित करें। कमजोर रचनाओं की प्राप्ति और उन्हें प्रकाशित न कर अस्वीकृत करने की अपेक्षा उनमें आवश्यक सुधार कर प्रकाशित करना हमारी दृष्टि में उचित होगा।

संस्मरण–शशांक शेण्डे

यह उन दिनों की बात है जब लाला जगदलपुरी जी आकाशवाणी से कुछ दूरी बनाए हुए थे। मैं लाला जी के घर गया पर वे वहां नहीं मिले। मैं उनके घर से वापिस आ रहा था तब वे चिर परिचित अंदाज़ में एक हाथ में छत्री पकड़े पैदल चलते हुए रास्ते में मिल गए। मैंने रूककर अभिवादन किया और बताया कि मैं आकाशवाणी जगदलपुर में काम करता हूं। आकाशवाणी जगदलपुर नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति के तत्वावधान में एक कविता प्रतियोगिता करवा रहा है और आकाशवाणी को प्रसन्नता होगी यदि आप उस प्रतियोगिता में निर्णायक के रूप में उपस्थित रहें। लाला जी ने एक बार अपनी बड़ी बड़ी ऑखों से मुझे देखा और कहा कि आजकल मेरी तबियत ठीक नहीं रहती है और मैं कहीं जाता नहीं हूं। मैंने उन्हें बताया कि केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों, बैंकों, भारत सरकार के उपक्रमों में हिन्दी के प्रचार–प्रसार और हिन्दी की उत्तरोत्तर प्रगति के लिए नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति प्रयासरत रहती है और इसी के मद्देनज़र यह प्रयास किया जा रहा है। मेरा उनसे कोई परिचय नहीं था परन्तु उन्होंने मेरी बात मान ली और निर्णायक के रूप में उन्होंने शिरकत की। मैंने लाला जी जैसा व्यक्तित्व बिरला ही पाया है। उनके अंदर न घमंड, न महत्वाकांक्षाएं न बड़ा साहित्यकार होने का दिखावा जैसा कि आजकल हमको देखने को मिलता है, कुछ भी न था। वे आए और उस कविता प्रतियोगिता में संयोगवश मेरी कविता **'हिन्दी पूर्ण सक्षम है अंग्रेज़ी के पीछे क्यों दौड़े'** को प्रथम पुरस्कार मिला जो मेरे लिए गौरव की बात है क्योंकि उसके निर्णायक लाला जी थे। जगदलपुर का कोई भी साहित्यकार लाला जी से प्रेरणा अवश्य पाता है, मैंने भी प्रेरणा पाई है, उनको श्रद्धाजंली स्वरूप मेरी यह कविता लाला जी को समर्पित है।

लाला जगदलपुरी

लाला जी/ क्या तुम चले गये हो ?
मैं तो आज भी देखता हूं
तुम पूरे शहर में
छत्री लेकर पैदल
घुमते रहते हो
जानता हूं मैं
तुम्हारा वो पैदल चलना
नहीं था किसी पुरस्कार के लिए
नहीं था किसी सम्मान के लिए
था पथ पर आगे बढ़ना
आत्म सम्मान के साथ
स्वाभिमान लिए
सारा शहर दो ही नाम
रटा करता था
बस्तर का राजा
जगदलपुर का लाला
नहीं जानता मैं
कितने लोगों ने पढ़ा
तुम्हारा लिखा साहित्य
फिर कैसे घर–घर पहुॅच गए
मैं जानता हूं तो बस इतना
तुम्हारे कण–कण में
बसता था बस्तर
कण–कण में बस्तर की सभ्यता और संस्कृति
साल वनों का द्वीप
यहां के आदिम और प्रकृत्ति
मैं जानता हूं
तुम समाए हो
यहां के प्रत्येक साहित्यकार में
बस्तर का साहित्य ही
आकार लेता है
तुम्हारे महाराजाओं जैसे बालों,
तीखे नक्श
गहराई लिए तपस्वी आंखों से
प्रखर सूर्य से तेज
ओजस्वी व्यक्तित्व से
और समाता है जाकर
तुम्हारे ह्दय की गहराईयों में
तुम बस्तर के लाला हो
या लाला का ये बस्तर है
पर्याय बन गए हो तुम
बस्तर की संस्कृति
सभ्यता और साहित्य का
सारा शहर अगर पृथ्वी
तो तुम लाला जी धुरी हो
जगन्नाथ के चरणों में
ज्यों जगन्नाथपुरी
वैसे ही हमारे
तुम लाला जगदलपुरी

शशांक श्रीधर
आकाशवाणी
जगदलपुर–494001
मो.–09424290567

संस्मरण : भरत कुमार गंगादित्य

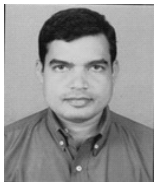

भरत कुमार गंगादित्य
जगदलपुर, छ.ग.
मो.–09479156705

बात तब की है जब मैं 'आकृति' की कवि गोष्ठियों में नियमित जाने लगा था। 'आकृति' संस्था ने बस्तर में चित्रकारों एवं साहित्यकारों को आगे लाने में जो योगदान दिया है, उसे कभी नकारा नहीं जा सकता। 'आकृति' का गठन नगर के कुछ सुधिजनों ने किया, पर इसे मूर्तरूप श्री बंशीलाल विश्वकर्मा जो कि प्रसिद्ध चित्रकार हैं, दूसरे श्री सुरेश विश्वकर्मा 'चितेरा' जो कार्टूनिस्ट के रूप में अपनी एक सफल पहचान बना चुके हैं, ने दिया। 'आकृति' सभागार में प्रत्येक अवसरों में होने वाली कवि गोष्ठियों में प्रमुख कवियों के रूप में श्री लाला जगदलपुरी, श्री रउफ परवेज, श्री हुकुमदास अचिन्त्य की उपस्थिति होती थी। इनके अलावा शहर के अन्य कवि भी होते थे। चूँकि आकाशवाणी जगदलपुर से हल्बी लोक गायन, मैंने अपने कला समूह के माध्यम से स्वर परीक्षण उत्तीर्ण किया था, अतः गायन शैली में अपने स्वरचित छत्तीसगढ़ी एवं हल्बी गीतों को कविगोष्ठी में भी गाकर प्रस्तुत किया करता था। उम्र में भी छोटा होने की वजह से सभी का लाड व दुलार मिलना ही था।

बात यहां पर लाला जगदलपुरी जी जिन्हें मैं 'दादा जी' संबोधित करता था उनसे संबंधित है। अक्सर उनके द्वारा भी हल्बी की रचनायें प्रस्तुत की जाती थी, जिसमें विशेषकर बस्तर से संबंधित रचना 'भूंई बस्तर आयं' किया करते थे। मेरे पास सांस्कृतिक दल भी था, व इसी बीच कलाकारों के मध्य हल्बी छत्तीसगढ़ी के एलबम निकालने का दौर भी चल पड़ा था। अतः 'आकृति' में चर्चा के दौरान आकृति के अध्यक्ष दादा बंशीलाल विश्वकर्मा जी ने कहा कि 'गंगादित्य, यदि इनकी रचनाओं की अच्छी धुनें बन जायें तो उस पर एक अच्छी कैसेट बन सकती है। सुनकर उन्होंने भी हामी भरी और कहा कि 'मैं अपनी रचनाएँ तुम्हें देता हूँ, इसकी अच्छी प्रस्तुति करना, यदि रिकार्डिंग न भी हो तो अपनी मंचीय प्रस्तुति में इनका उपयोग किया करना।' फिर उन्होंने शहर के स्मृति प्रिंटर्स से अपनी आंचलिक रचनाओं का प्रकाशन करवाया एवं प्रकाशन के उपरांत उसकी एक प्रति मुझे दी। मैंने उन रचनाओं को पढ़ा व गेय रचनाओं की धुने तैयार की। जब एक शाम 'आकृति' में उनके गीतों की एक संगीतमय प्रस्तुति हुई तो उस प्रस्तुति में मेरे गायन के साथ–साथ मेरे वाघ यंत्र के सहयोगी भी सम्मिलित हुये। इस प्रस्तुति में 'आकृति' के आयोजकगण के साथ–साथ मैंने लाला जगदलपुरी दादा जी के चेहरे पर भी एक अद्‌भुत खुशी देखी। उन्होनें ढेर सारा आशीर्वाद दिया। चरणस्पर्श के पश्चात सर पर हाथ रखा कहा कि 'बहुत अच्छा है। मॉ सरस्वती की कृपा तुम्हारे साथ है। अपनी मंचीय प्रस्तुति आदि के लिए मेरी रचनाओं का उपयोग करने की तुम्हें भरपूर आजादी है। इसके साथ ही एक प्रयोग यदि कर सकते हो तो और करना, मेरे पास हिन्दी में लिखी गज़ले भी है, उनकी भी धुनें बनाना।' यह कह अपनी हिन्दी गज़लों की किताब तो मुझे दी ही, साथ ही अन्य गीतिय रचनाएँ–सरस्वती वंदना, कंकालिन वंदना, मॉ दंतेश्वरी प्रार्थना बन्दा बैरागी काव्यखंड व गुरू गोविन्द सिंह रचनाओं को भी प्रदान किया। तब से लेकर अब तक लोक कला प्रस्तुति के दौरान उनकी रचनाओं से कोई रचना चाहे मघनिषेध की हो, चाहे बस्तर माटी से संबंधित हो या अन्य दृश्य प्रसंग से संबद्ध हो, अपनी कला प्रस्तुति अवश्य करता हूँ। एलबम बनाने की योजना तात्कालिक रूप से स्थगित कर दी गई, परंतु गीतों को यदि स्वर मिले एवं स्वर को श्रोता तभी गीतों की प्रस्तुति सार्थक होती है। इसी प्रकार उन्होंने सटीक गीत लिखे, एवं उनके लिखे हुए गीतों को श्रोता व दर्शकों तक पहुँचाना मेरे स्वर के माध्यम से होता आया, इसके लिये मैं स्वयं को गौरवान्वित पाता हूँ। अपनी नाट्य प्रस्तुतियों के बीच जब भी कोई मौका मिलता है, उस अनूठे कलमकार की रचनाओं को लोककला मंच में पिरोकर जब भी प्रस्तुत करता हूँ तो देखकर या सुनकर दर्शक व श्रोता रोमांचित हो उठते हैं।

उनसे जुड़ी हुए यादों में और भी प्रसंग हैं। अक्सर उनके डोकरीघाट में स्थित कवि निवास में जब जाना होता था, तब वे अपनी यादों के संबंध में भी चर्चा किया करते थे। उन्हें जब पं. सुन्दरलाल शर्मा सम्मान मिला तब उन्होंने कहा था कि 'देखिये, दो लोगों को ये सम्मान मिला है। एक और सज्जन है उनके द्वारा खुद के सम्मान के लिए नाम प्रस्तुत किया गया था जबकि हमने हमारा नाम प्रस्तावित नहीं किया, हमें यह सम्मान बिना मांगे ही सरकार द्वारा दिया जा रहा है। हमने कभी सम्मान की चाह नहीं की।' उनकी निश्छलता व सरलता दूसरी चर्चा में दिखती है। जब वे इस सम्मान को लेकर आए तब उनसे मिलने मैं उनके पास गया, उस दरम्यान उन्होंने हॅसते हुए बताया कि रायपुर में जब उन्हें ठहराया गया, तब उनके लॉज में जो शौचालय था, वह पाश्चात्य ढंग से बना था। तब उन्होंने आयोजकों से कहा कि जहॉ भारतीय ढंग का शौचालय हो, वहॉ मुझे ठहरायें तब उनके लिए उनके मन के मुताबिक लॉज की व्यवस्था हुई। मैंने शुरूआत में उन्हें अपनी लिखी कवितायें दिखाई थी, तब उन्होंने सराहना की व कहा कि 'लिखना, निरन्तर लिखना।' उनसे रचना धर्मिता के संदर्भ में जो मुझे प्रेरणा मिली, वह मेरा धन्यभाग्य। एक बात और जो मुझे याद आ रही है, वह है 'आकृति' के द्वारा उनका जन्म दिवस मनाया जाना। 'आकृति' ने उनका जन्म दिवस धूमधाम से मनाया एवं कवि गोष्ठी भी रखी गयी थी। उस अवसर पर भी मैं

पूरे आयोजन में सहभागी बना था।

लाला जगदलपुरी जी के निधन की सूचना मुझे सनत भैया के एसएमएस से मिली। एक रचना संसार के धनी व्यक्तित्व के अंतिम यात्रा में सम्मिलित होकर उनके दाह संस्कार में मैंने देखा कि साहित्यक जगत, रंगमंच कला जगत व समस्त पत्रकारों ने अपनी श्रद्धांजली वहॉ उपस्थिति देकर प्रदान की। वह दुपहरी भुलाये नहीं भूलती, जहॉ एक अनूठा कलमकार, अपने जीवन से विदा लेकर चिर निद्रा मे लीन था। अंतिम विदाई तो उन्हें हम सभी ने दी परन्तु उनकी प्रेरणा, सादगी व नियमितता की प्रेरणा देती जीवन शैली एक बानगी के रूप में अपनी यादों के साथ हमारे जेहन में हमेशा रहेगी। साहित्य के इस धनी कलम के अदभुत चितेरे को इस पत्रिका 'बस्तर पाति' के माध्यम से श्रद्धांजली प्रदान करता हूँ।

लघुकथाएं

दादी की ममता

चिलचलाती धूप पड़ रही थी, दोपहर के दो बजे का समय था। ऐसे में बूढ़ी दादी अपने पोते मयंक की प्रतिक्षा में खड़ी पसीन से भीग रही थी। मयंक प्रतिदिन इसी समय पाठशाला से लौटता है। दादी ही उसके लिए दरवाजा खोलती है। दरअसल पिछले दिनों दोपहर के समय उस कालोनी में हुई चोरियों की वजह से बेटे का कड़ा आदेश था कि दरवाजा बंद रखा जाए। ऐसे में मयंक की मां तबियत खराब होने का बहाना बनाकर बिस्तर पर लेटी रहती। दादी के भीतर पोते को लेकर इतनी ममता थी कि वह खुद ही समय का ध्यान करके उसकी प्रतीक्षा में फाटक के पास खड़ी रहती, ताकि पोते को धूप में खड़ा होकर फाटक खुलने का इंतजार न करना पड़े।

आज न जाने क्यों मयंक समय हो जाने पर भी पाठशाला से नहीं लौटा था। वैसे भी कल शाम से वह दादी से नाराज चल रहा था। पाठशाला जाते समय भी वह उनसे नहीं बोला–बतियाया था। कल जब खेलने के लिए वह कहीं बाहर जा रहा था तो दादी ने रोक दिया था कि आज उसे खेलने नहीं जाने देंगी। उसे पढ़ना होगा। नये विद्यालय में प्रवेश के लिए परीक्षा जो देना है। पोते को यह बात अच्छी नहीं लगी थी। उसने दादी को अपशब्द बोल दिये थे। दादी को बुरा तो लगा पर हमेशा की तरह सब सह गयी थी। पोते की मां भी अक्सर उसके साथ झगड़ते हुए अपशब्द बोलती थी। पोता क्यों न बोलता।दादी की नजर ने अचानक देख लिया कि मयंक जानबूझकर बराबर वाले मकान की छाया में खड़ा अपने दरवाजे की ओर देख रहा है। साफ था कि वह दादी से बात नहीं करना चाहता था। दादी ने झट से सांकल खोलकर उसे आवाज दी, पोते ने मुंह घुमा लिया जैसे उसने सुना ही न हो। दादी उसे लिवा लाने के लिए आगे बढ़ी, वह भाग खड़ा हुआ, दादी ने कोशिश की कि तेज कदम रखकर उसे पकड़ ले, इसी वजह से वह लड़खड़ाई और गिर पड़ी। गिरते ही उसकी बाजू टूट गयी।

दादी अपनी जगह पर पड़ी दर्द से बिलबिला रही थी, जबकि पोता उनके निकट से निकलकर मकान के भीतर जा चुका था।

पवन तनय अग्रहरि अद्वितीय
पुराना चौक, श्री देववाणी विद्यालय के सामने, शाहगंज
जौनपुर उ.प्र.
मो.–09621062430

तुलना

मोटे साहब ने माली के डेढ़ वर्षीय बेटे तो सोते हुए कुत्ते के पिल्ले की रोटी की प्लेट की तरफ बढ़ता देखकर रोटी उठा ली। पंजे के बल खड़ा होकर, हाथ बढ़ाकर बच्चा रोटी को अपनी पहुंच से कुछ ऊंचा देखता रहा। मोटे साहब ने रोटी बच्चे की पीठ की तरफ फेंक दी। बच्चा घूमा और रोटी तक पहुंच पाता, साहब ने रोटी को उठाकर दूर फेंक दिया। वह छोटे–छोटे टुकड़े भी उछालता। इस तरह रोटी के कई टुकड़े इधर–उधर बिखरते गए। आखिरकार, मोटा साहब ऐसा थकते तक करता रहा। पिल्ले की नींद खुली और वह मोटे साहब के हाथ में पकड़े बड़े टुकड़े को झपटकर खाने लगा। बच्चे को खुशी–खुशी जमीन पर बिखेर रोटी के टुकड़ों को खाते देख मोटा साहब बोला, 'स्साला, माली का पिल्ला। खूब छकाया कुत्ते के पिल्ले को ऐसा करता, तो काट खाता।'

सुबह का सपना

उसने देखा, प्लेट पूरी तरह भरी हुई थी। चमचम, गुलाबजामुन के साथ पकौडे और कचौरियां भी। पुलाव था और रायता भी। उसने पेट भर खाया, फिर प्लेट सामने खेलते बच्चों के सामने रख दी। पलभर में वह साफ हो गई। अचानक उसकी नींद खुल गई। पर सपना याद रहा। मों का चेहरा अपनी ओर घुमाते हुए उसने कहां, 'मां, भूख लगी है।' पर मां चेहरा ढंककर सो गई। उनके चेहरे से चादर हटाते हुए वह बोला, 'सचमुच बहुत जोर की भूख लगी है।'

मां ने एक चांटा उसके गाल पर लगाते हुए कहा, 'सुबह–सुबह तो सोने दे।' इस बार उसने पूरी चादर खींच दी और चिल्लाया, 'मां, बहुत भूख लगी हैं, कुछ भी खाने को दो।'

मां ने उसके दूसरे गाल पर चांटा रसीद करते हुए कहा, 'ले, अब जा तू भी सो और मुझे भी सोने दे। भूख के कारण रातभर नींद नहीं आई....।'

बालकृष्ण गुप्ता 'गुरू'
डॉ.बख्शी मार्ग, खैरागढ़
मो.–09424111454

लाला जगदलपुरी

राजीव रंजन प्रसाद
प्रबंधक (पर्यावरण)
कॉलोनी विभाग
इंदिरासागर पावर स्टेशन
नर्मदानगर,
जिला–खण्डवा–450119
मो.–07895624088

अभी दो माह पहले ही मैं लाला जगदलपुरी से उनके निवास पर मिला था। उनका जीवन पूरी तरह एक बिस्तर पर सिमट गया था। बहुत कोशिश के बाद उन्होंने मुझे पहचाना और मैंने उनका कंपकंपाता हुआ हाथ पकड़ लिया। यह उनसे मेरी आखिरी मुलाकात थी। लाला जी का आखिरी साक्षात्कार भी मैंने ही लगभग एक वर्ष पूर्व लिया था और तब दुःखद आश्चर्य यह था कि उन्होंने लिख कर सभी प्रश्नों का उत्तर दिये। विश्वास ही नहीं होता कि लाला जगदलपुरी अब हमारे बीच नहीं रहे। रियासत कालीन बस्तर में राजा भैरमदेव के समय में दुर्ग क्षेत्र से चार परिवार विस्थापित हो कर बस्तर आये थे। इन परिवारों के मुखिया थे – लोकनाथ, बाला प्रसाद, मूरत सिंह और दुर्गा प्रसाद। इन्हीं में से एक परिवार जिसके मुखिया श्री लोकनाथ बैदार थे, वे शासन की कृषि आय–व्यय का हिसाब रखने का कार्य करने लगे। उनके ही पोते के रूप में श्री लाला जगदलपुरी का जन्म जगदलपुर में हुआ था। लाला जी के पिता का साया उनके सिर से उठ गया तथा माँ के ऊपर ही दो छोटे भाईयों व एक बहन के पालन–पोषण का दायित्व आ गया। लाला जी के बचपन की तलाश करने पर जानकारी मिली कि जगदलपुर में बालाजी के मंदिर के निकट बालातरई जलाशय में एक बार लाला जी डूबने लगे थे, यह हमारा सौभाग्य कि बहुत पानी पी चुकने के बाद भी वे बचा लिये गये।

लाला जी का लेखन कर्म 1936 में लगभग सोलह वर्ष की आयु से प्रारम्भ हो गया था। लाला जी मूल रूप से कवि थे। यह उल्लेखनीय है कि लाला जगदलपुरी का बहुत सा कार्य अभी अप्रकाशित है तथा दुर्भाग्यवश कई महत्वपूर्ण कार्य चोरी कर लिये गये। यह 1971 की बात है जब लोक–कथाओं की एक हस्तलिखिल पाण्डुलिपि को अपने अध्ययन कक्ष में ही एक स्टूल पर रख कर लाला जी किसी कार्य से बाहर गये थे कि एक गाय ने सारा अद्भुत लेखन चर लिया था। जो खो गया अफसोस उससे अधिक यह है कि उनका जो उपलब्ध है वह भी हमारी लापरवाही से कहीं खो न जाये, आज भी लाला जगदलपुरी की अनेक पाण्डुलिपियाँ अ–प्रकाशित हैं किंतु हिन्दी जगत इतना ही सहिष्णु व अच्छे साहित्य का प्रकाशनिच्छुक होता तो वास्तविक प्रतिभायें और उनके कार्य ही मुख्यधारा कहलाते।

केवल इतनी ही व्याख्या से लाला जी का व्यक्तित्व विश्लेषित नहीं हो जाता। वे नाटककार एवं रंगकर्मी भी थे। 1939 में जगदलपुर में गठित बाल समाज नाम की नाट्य संस्था का नाम बदल कर 1940 में सत्यविजय थियेट्रिकल सोसाईटी रख दिया गया। इस संस्था द्वारा मंचित लाला जी के प्रमुख नाटक थे–'पागल' तथा 'अपनी लाज'। लाला जी नें इस संस्था द्वारा मंचित विभिन्न नाटकों में अभिनय भी किया था। 1949 में सीरासार चौक में सार्वजनिक गणेशोत्सव के तहत लाला जगदलपुरी द्वारा रचित तथा अभिनित नाटक 'अपनी लाज' विशेष चर्चित रहा था।

लाला जगदलपुरी से जुड़े हर व्यक्ति के अपने अपने संस्मरण है तथा सभी अविस्मरणीय व प्रेरणास्पद। लाला जगदलपुरी के लिये तत्कालीन मुख्यमंत्री अर्जुन सिंह ने शासकीय सहायता का प्रावधान किया था जिसे बाद में आजीवन दिये जाने की घोषणा भी की गयी थी। आश्चर्य है कि मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह शासन ने 1998 में यह सहायता बिना किसी पूर्व सूचना के तब बंद करवा दी, जिस दौरान उन्हें इसकी सर्वाधिक आवश्यकता थी। लाला जी ने न तो इस सहायता की याचना की थी न ही इसे बंद किये जाने के बाद किसी तरह का पत्र व्यवहार किया। यह घटना केवल इतना बताती है कि राजनीति अपने साहित्यकारों के प्रति किस तरह असहिष्णु हो सकती है।

लाला जी की सादगी को याद करते हुए वरिष्ठ साहित्यकार ह्रषिकेष सुलभ एक घटना का बहुधा जिक्र करते हैं। उन दिनों मुख्यमंत्री अर्जुन सिंह जगदलपुर आये थे तथा अपने तय कार्यक्रम को अचानक बदलते हुए उन्होंने लाला जगदलपुरी से मिलना निश्चित किया। मुख्यमंत्री की गाड़ियों का काफ़िला डोकरीघाट पारा के लिये मुड़ गया। लाला जी घर में टीन के डिब्बे से लाई निकाल कर खा रहे थे और उन्होंने उसी सादगी से मुख्यमंत्री को भी लाई खिलाई। लाला जी इसी तरह की सादगी की प्रतिमूर्ति थे।

कार्य करने की धुन में वे अविवाहित ही रहे थे। जगदलपुर की पहचान डोकरीनिवास पारा का कवि निवास अब लाला जगदलपुरी के भाई व उनके बच्चों की तरक्की के साथ एक बड़े पक्के मकान में बदल गया है तथापि लाला जी घर के साथ ही लगे एक कक्ष में अत्यधिक सादगी से रह रहे थे। इसी कक्ष में उन्होंने अंतिम स्वांस ली। लाला जगदलपुरी का न होना एक अपूर्णीय क्षति है, उन्हें अश्रुपूरित श्रद्धांजलि।

लाला जगदलपुरी : जैसा मैंने जाना

हरिहर वैष्णव
सरगीपाल पारा,
कोण्डागांव
जिला–कोण्डागांव,
मो.–09

लालाजी का सृजन इतना उत्कृष्ट और प्रमाणिक कि लोग उनका लिखा चुराने लगे।बाल साहित्य लेखन में भी उनका गुणात्मक योगदान उल्लेखनीय और सराहनीय रहा है। लालाजी के अतीत का थोड़ा–सा समय साहित्यिक पत्रकारिता को समर्पित रहा। वे जगदलपुर से कृष्ण कुमार जी द्वारा प्रकाशित साप्ताहिक 'अंगारा' में सम्पादक, रायपुर से ठाकुर प्यारेलाल जी द्वारा 'देशबंधु' में सहायक सम्पादक, महासमुन्द से जयदेव सतपथी द्वारा प्रकाशित 'सेवक' में सम्पादक और जगदलपुर से ही तुषारकान्ति बोस जी द्वारा बस्तर की लोकभाषा हल्बी में प्रकाशित साप्ताहिक 'बस्तरिया' में सम्पादक रहे। वे इस साप्ताहिक के माध्यम से आंचलिक पत्रकारिता के सफल प्रयोग से चर्चित रहे। उन्हें देश की विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में निरन्तर प्रकाशन मिलता रहा। यद्यपि उनके खाते में 2004 में छत्तीसगढ़ शासन के पं. सुन्दरलाल शर्मा साहित्य सम्मान सहित 1972 से लगातार प्राप्त होने वाले अनेकानेक सम्मान दर्ज हैं तथापि दो ऐसे सम्मान हैं, जिन्हें वे बारम्बार याद करते हैं। इन सम्मानों की चर्चा करते हुए उनकी आंखों में एक अनोखी चमक आ जाती है।

सन् 1987 के दिसम्बर महीने की एक शाम। जगदलपुर नगर के सीरासार हाल' में शानी जी का नागरिक अभिनंदन किया जा रहा था। बस्तर सम्भाग के तत्कालीन आयुक्त सम्पतराम उस सम्मान–समारोह की अध्यक्षता कर रहे थे। 'सीरासार (सिरहा–सार) आमंत्रितों से खचाखच भरा था। उस कार्यक्रम में लालाजी भी आमंत्रित थे। वे सामने बैठे हुए थे। कार्यक्रम शुरू हुआ। शानीजी को पहनाने के लिए फूलों का जो पहला हार लाया गया, उसे लेकर शानी जी मंच से नीचे उतर पड़े। लोग उन्हें अचरज भरी उत्सुकता से देख रहे थे। शानी जी सीधे लालाजी की कुर्सी के पास आ खड़े हुए। लालाजी भी तुरन्त खड़े हो गये। हार उन्होंने लालाजी के गले में डाल दिया। दोनों आपस में लिपट गये। आनन्दातिरेक की घड़ियां थीं। अप्रत्याशित और अनसोचा दृश्य था। प्रायः जैसा नहीं होता, वहां वैसा हो गया था। उपस्थित लोग भाव–विभोर हो गये थे। वातावरण में कई क्षणों तक तालियों की गड़गड़ाहट गूंजती रही थी। उस दृश्य को याद कर लालाजी कहा करते हैं– 'उस अभिनन्दन समारोह में मुझे ऐसा लगा कि वहां अभिनन्दन मेरा हुआ है।'जगदलपुर स्थित मण्डी प्रांगण में अखिल भारतीय कवि सम्मेलन के मंच पर स्व. दिनेश राजपुरियाजी लालाजी को सम्मानित करना चाहते थे। वे लालाजी से मिले किन्तु लालाजी ने बड़े संकोच के साथ उनसे क्षमा मांग ली थी। उस रात कवि सम्मेलन को लालाजी के संकोच का जिक्र करते हुए घोषणापूर्वक उन्होंने लालाजी को समर्पित कर दिया था। लालाजी इस घटना को याद करते हुए कहते हैं–'.....और मैं मन ही मन सम्मानित हो गया था।'

यह कहना ज्यादा समीचीन होगा कि वे प्रत्येक उस रचनाकार की रचना को बड़े ममत्व से पढ़ते और उस पर अपना रचनात्मक सुझाव देते हैं, जो उनसे अपनी रचना को 'देख लेने' का आग्रह करता था। ऐसे रचनाकारों में सुप्रसिद्ध कथाकार–उपन्यासकार शानी और आलोचना के शिखर पुरूष डॉ. धनंजय वर्मा के अलावा सुरेन्द्र रावल, लक्ष्मीनारायण पयोधि और त्रिलोक महावर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

किन्तु वे दोषी हैं। और दोष यह है कि वे निर्दोष हैं। सच ही तो है, निर्दोष होना ही तो आज के युग में दोष है। वे निर्लिप्त हैं प्रचार–प्रसार से कोसों नहीं बल्कि योजनों दूर रहने में भरोसा करते हैं। आत्म–संतोषी होना दोष है तो वे दोषी हैं। कारण, वे आत्म–संतोषी हैं। वे एक साक्षात्कार में कहते भी हैं कि उन्हें जितना और जैसा प्रकाशन मिला वह यथेष्ट है। उन्हें लोगों द्वारा सम्मनित किया गया, यही उनका असली सम्मान है। सरकारी और गैर सरकारी संस्थाओं के सम्मान को वे तूल भी नहीं देते। जगदलपुर ही नहीं अपितु पूरे बस्तर और बस्तर के बाहर छत्तीसगढ़ और मध्यप्रदेश में उन्हें जाना जाता है। लोग उन्हें पहचानते हैं और सम्मान देते हैं। बस! इतना ही उनके लिए पर्याप्त है। बस्तर और बस्तर के बाहर के लोग बस्तर सम्बंधी जानकारी के लिए उन्हें न केवल याद करते हैं बल्कि

उनकी सामग्री का भी भरपूर उपयोग करते हैं और बदले में दिखा देते हैं ठेंगा। किन्तु लालाजी को इसकी कोई शिकायत नहीं। वे कभी किसी को कोई भी जानकारी देने से इंकार नहीं करते। उनका कहना है, ज्ञान बांटने से बढ़ता है। फिर उसे संदूक में बंद कर रखने या मन में छिपा कर रखने से क्या लाभ ? बस! उनकी इसी उदार और स्वाभाविक सोच ने उनसे उनका सारा ज्ञान चोरी करवा लिया। लोगों ने मांगा और चुराया भी। न केवल चुराया बल्कि उस चोरी के माल से राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति भी अर्जित की। वे नहीं चाहते कि उनकी चर्चा प्रान्तीय या राष्ट्रीय स्तर पर किसी 'जुगाड़' के तहत हो। वे दोषी इस बात के भी हैं कि वे सरकारी सुविधाएं नहीं झटक सके जबकि उनके चरणों की धूलि से भी समानता करने में अक्षम लोगों ने सारी सरकारी सुविधाएं बटोर लीं। यदि स्वाभिमानी होना गलत है, तो वे गलत हैं। कारण, स्वाभिमान तो उनमें कूट–कूट कर भरा है। वे अपने एक संस्मरण में कवियों के चार प्रकार गिनामे हैं, अफसर कवि, नेता कवि, व्यवसायी कवि और फक्कड़ कवि। उनके द्वारा किये गये इस वर्गीकरण में वे स्वयं को 'फक्कड़ कवि' की श्रेणी में पाते हैं। साहित्य की साध ाना करना दोष है तो वे दोषी हैं, क्योंकि वे तो साहित्य–साधक हैं; तपस्वी हैं। एकनिष्ठ होना यदि दोष है तो वे दोषी हैं क्योंकि उनका एकमात्र उद्यम है साहित्य–साधना। साहित्य की राजनीति और गुटबाजी से अपने आप को दूर रख कर रचना–कर्म में लगे रहना यदि दोष है तो लालाजी दोषी हैं, क्योंकि न तो उन्होंने साहित्य की राजनीति अपने पास फटकने दिया और न गुटबाजी की दुर्गन्ध की ओर अपनी नाक ही दी।

लालाजी अपनी दिवंगत माता को शिद्दत से याद करते हुए अत्यंत भावुक हो उठते हैं। उन्हें स्मरण कर आज 92 वर्ष की आयु में भी उनकी आंखें पनीली हो आती हैं। निम्न मुक्तकों में अपनी माता के प्रति उनकी श्रद्धा और भक्ति प्रदर्शित होती हैः–

आयु के तुमने भयानक वर्ष झेले,/नर–पिशाचों के गलत आदर्श झेले,
जन्मदात्री! खूब था जीवन तुम्हारा/खूब, तुमने खूब ही संघर्ष झेले।

माता की मृत्यु ने उन्हें विचलित कर दिया था। वे अपनी माता की मृत्यु से इतने व्यथित हुए कि उन्हें 'भगवान–खोली' यानी पूजा कक्ष भी माता की अनुपस्थिति में सूना लगता हैः–

हृदय सूना, प्राण सूने,/नयन सूने, कान सूने
क्या करें भगवान–खोली/मां बिना भगवान सूने।

माता का वरदहस्त उनके सिर पर था और ऐसे में जब उनकी मृत्यु हुई तो लालाजी पर मानो गाज ही गिर पड़ी। उन्हें अपनी माता से बहुत सम्बल मिला करता था। दीनता से भरे समय में भी माता के हाथ ऊंचे रहा करते, कटि झुकी होने के बावजूद उनका माथा ऊंचा रहा करताः–

पेट भूखा, हाथ ऊंचा!/कटि झुकी, पर माथ ऊंचा।
थी गिरी हालत, मगर मां,/ था तुम्हारा साथ ऊंचा!

लालाजी को इस बात का सदैव दुःख रहा कि उनकी माता के संगी केवल और केवल दुःख और दर्द ही रहे थे। यह दुःख उनको सालता रहा हैः– संगी थे दुःख–दर्द तुम्हारे,/ थीं तुम इतनी नेक, रहमदिल
सबकी फरियादें पी–पी कर,/ घुटती रहती थीं तुम तिल–तिल।
मां के रूप मिलीं तुम मुझको,/मुझे दे गई मेरी मंजिल।
मन के गगन तुम्हारी सुधियां,/रात–रात भर झिलमिल–झिलमिल।

माता की दिनचर्या में केवल और केवल काम हुआ करता था। विश्राम के पल आते ही नहीं थे। उन्होंने अपनी माता को हमेशा 'कमेलिन' की तरह काम में जुटी हुई देखा थाः–

कभी सीती–टांकती–सी दिख पड़ती हो/जख़्म ताजा आंकती–सी दिख पड़ती हो,
कभी कमरे में रसोई के कमेलिन मां!/खोलती कुछ ढांकती–सी दिख पड़ती हो!

आंतरिक स्फूर्ति मेरी खो गई,/हृदय–धन की पूर्ति मेरी खो गई,
वेदना ही वेदना में एक दिन/वेदना की मूर्ति मेरी खो गई!

नीड़ छोड़ कर चल बसी,/चिड़िये! तुम किस ठौर ?
किस तरू की किस डाल पर,/ किया बसेरा और ?

काव्य

खामोशी के साथ

कोहरे की बुक्कल मारे हुए
सूरज का मखौल उड़ाता
बर्फीले नाले में खड़ा
वह बच्चा
'झूम बराबर झूम'
गुनगुनाता
तलाश रहा है कचरा।
चार से छह साल के
बच्चों का समूह
विकास भवन के
कुड़ेदानों से
तलाश रहा है
दीमक लगे फाइलकवर
मिठाई के खाली डिब्बे।
कहीं भी
कैसी भी
गंदगी हो
सितारवादक–सी
सधी उंगलियों से ये
तलाश लेते हैं
शेयर बाजार के सूचकांक
और प्रधानमंत्री की घोषणा से
कोई सरोकार नहीं रखते हैं ये
कबाड़ी से
परचून की दुकान तक
सिमटी होती है
इनकी दुनिया।
कभी नहीं बनते हैं ये
अरूंधती राय के
विमर्शों का विषय
देखते ही देखते
बचपन से बुढ़ापे की ओर
चल पड़ते हैं
इनके कदम।
मीडिया की भी
सुर्खियों में
नहीं रहते हैं ये
बस,
धरती को
साफ–सुथरा करते रहते हैं
खामोशी के साथ।

मनु स्वामी
46–अहाता औलिया,
मुजफ्फरनगर (उ.प्र.
)–251002
मो.–09997749350

प्रकाशित कृतियां
कविता संग्रह–
दीवार में पीपल,
शब्द–संवाद,
बहती है कविता
लघुकथा संग्रह–
अपने आस–पास,
एक बार फिर

काव्य

जीने को जी रहे हैं

कहीं खुशियों की बारात है
कहीं अश्कों की बरसात है।
कहीं देर कहीं अंधेर है
कहीं दिन में ही रात है।
भूल के इंसानियत को–
पूछते इंसान की जात है।
देखने में जो भोली सूरतें हैं
वे भी अब करती घात है।
झूठ हो गया इतना जमा
सच को द्वार पे ही मात है।
जीने को जी रहे हैं सभी
पहले सी कहां वो बात है।
नहीं अब अधरों पे हंसी
फिकी लगती हर बात है।
इतनी समझ रखके भी
इंसां करते क्यों घात है।
बात–बात पे अब 'अलवरी'
चलते हाथ और लात है।

डॉ.जयसिंह अलवरी
सम्पादक–साहित्य सरोवर
दिल्ली स्वीट, सिरूगुप्पा–583121
जिला–बल्लारी (कर्नाटक)
मो–09886536450

कितनी हसरतों से

हमसे हमारे न कभी तोड़े उसूल गये
चले हम दरो–रसन पे झूल–झूल गये।
कभी सदमे औ' कभी जख़्म मिले हैं इतने
रहते हैं खोये–खोये, हंसना तक भूल गये।
लगता है डर अब खुद के साये से भी
यह कैसे खौफ में आज हम ढूल गये।
दिल औ' जां सब कुर्बान किये थे जिनमें हम
वे भी भूल अहसां लेने इम्तिहां तुल गये।
कल तक वे गूंगे थे जीने का सलिका न था
आज बैठे दौलत आई, तो मुंह खुल गये।
कितनी हसरतों से सजाई थी यह माला
राह तकते थकी आंखें, मुरझा फूल गये।
देखो कैसा सिला देकर गये हैं मेरी वफा का
करके रूसवाई, गिरा चाहत पे धूल गये।
यह दर्द और यह तड़प किसे बतायें
हमे हमारे भी होकर, बेरहम भूल गये।
की हकीकत से वाकिफ़ कराने 'अलवरी'
निकाली कलम़ तो वे राज सब खुल गये।

खिल उठा जीवन

मेरे अंगना आई गौरेया
देख मेरा उपवन
मन मेरा खिल उठा
देख उसका चितवन।
छोटे–छोटे पांव हैं उसके
छोटी–छोटी आंखें,
दाना चुगती चोंच से अपनी
मुंह वो मटकाती,
उसकी इस मासूम छवि से
खिल उठा जीवन।
बारिश को न्यौता वो देती
जब भी धूल नहाती,
ऋतु के आते ही वो
घोंसला अपना बनाती,
उसके गुनगुनाने से
चहक उठता मधुवन।

कीर्ति श्रीवास्तव
242,सर्वधर्म कालोनी,
सी–सेक्टर
कोलार रोड,
भोपाल (म.प्र.)–462042

सम्पादक
साहित्य समीर दस्तक

दूर जाने का फैसला कर लिया

आज जो ग़म को भुलाने का फैसला कर लिया,
सांसों ने भी दूर जाने का फैसला कर लिया।
हमसे नाराज़ रहने की जिद छोड़ दे तू,
हमने तुझको पाने का फैसला कर लिया।
बदली में छिपते चांद, सितारों को देखो,
खुद को सूरज की तपिश में तपाने का फैसला कर लिया।
ज़ख़्मी परिन्दे की उड़ान देखकर हमने
नई उम्मीदों को जगाने का फैसला कर लिया।
जीवन में जब छाने लगा घना अंधेरा,
सभी को चिराग दिखाने का फैसला कर लिया।
तेरे ख्वाबों में ख़ुद को देखने की खातिर,
तेरी पलकों से नींद चुराने का फैसला कर लिया।
तेरे इंतजार में मैयत सजा ली अब तो,
प्यार के परिन्दों को उड़ाने का फैसला कर लिया।

चंद सवाल

मैं हूं एक कामना बनकर अमन बहना चाहती हूं
हर एक के दिल में रहना चाहती हूं।
मैं उनसे कुछ जानना चाहती हूं
जो धमाकों के धुंध में खुद को खोना चाहते हैं
हंसने के मौसम में रोना चाहते हैं?
वो आंसूओं के सागर को
दर्द की तपिश देकर
खूनी मेघ क्यों बनाना चाहते हैं?
जिसके बरसने से आहत हो ये धरा
ऐसा व्यूह क्यों रचना चाहते हैं?
जो दे न सके जीवन
वो लेना क्यों चाहते हैं?
ये दुनिया है अस्थायी निवास
ये क्यों समझना नहीं चाहते हैं?
आखिर इस दुनिया में
जीवन से कीमती क्या है
जिसे वो पाना चाहते हैं?
आखिर वो क्या चाहते हैं
मैं जानना चाहती हूं।
मासूमों की लाशों के ढेरों से
आंधियां चलती है,
कांप उठती है धरा
वो कैसे उसे थामना चाहते हैं?
मिटाकर बनाने की
कैसी परिपाटी चलाना चाहते हैं?
गिनती की होती हैं सांसें
हर एक के हिस्से में
मिटाने और पाने की धुन में
गर सांसे हो जायें खत्म
तो कौन से भगवान से
वो सांसें मांगना चाहते हैं?
आखिर वो क्या चाहते हैं
मैं हूं एक कामना बनकर अमन बहना चाहती हूं
हर एक के दिल में रहना चाहती हूं।

श्रीमती एम. दंतेश्वरी राव
पी.टी.आई. मसोरा
चिखलकुटी, कोण्डागांव छ.ग.

काव्य

फिजूलखर्च

मैं जब भी
मिलता था उससे
हर मुलाकात में
उसके होंठों से बचाकर
रख लेता था कुछ शब्द।

वह जब भी मिलती
जान ही नहीं पाती थी
कितना वक़्त है उसके पास
मेरे ऊपर खर्चने को
मैं चुरा लेता था
कुछ अधिक वक्त।

हर मुलाकात में
उसकी नजरें बचा
मैं छुपा लेता था
अपनी आंखों में
उसकी सुंदरता
थोड़ी सी हंसी
ढेर सी मुस्कान
वह इतनी सम्पन्न थी
कि उसे पता ही नहीं चलता था
कहीं कुछ कम हुआ है।

मैं चुराता रहा
शब्द, वक्त, सुंदरता
हंसी, मुस्कान.....
कभी गया ही नहीं उसका ध्
यान
इन मामलों में वह
मेरे प्रति
बहुत फिजूलखर्ची थी।

हर मुलाकात में
चौकन्नी रहती थी वह
सिर्फ अपने जिस्म के प्रति
उसकी सारी ऊर्जा
सिर्फ जिस्म को
दिखाने–छुपाने–ललचाने
चोरी से बचाने में
होती थी खर्च।

उसके जिस्म को पाने में
उसमें से कुछ चुराने में
मेरी रूची थी ही नहीं
यह बात कभी नहीं
जान पाई वह।

कब, कहां, कैसे,
क्या करना चाहिए खर्च
क्या बचाना है व्यर्थ
उसे बहुत देर बाद
तब पता चला
जब वक्त ने
धीरे–धीरे चुरा लिया
उसका रूप लावण्य सारी सुंदरता।

लड़कियों को
पता ही नहीं चलता
क्या है खर्चना
क्या है बचाना
कितना खोकर
कितना पाना
इन मामलों में लड़कियां
होती हैं फिजूलखर्च।

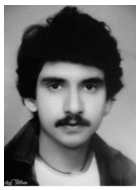

कुमार शर्मा अनिल
1192–बी,सेक्टर 41–बी,
चंडीगढ़
मो–09914882239
मुख्य सम्पादक
'नवकिरण'

काव्य

मुझे प्रतीक्षा है

मुझे प्रतीक्षा है
सूरज मेरे भीतर
पसर जाये
और अपनी
रश्मियों से
मिटा डाले अंधेरा।
मेरे भीतर का
अंधेरा छंटता नहीं
न ही खत्म होती है
मेरे भीतर की लड़ाई
कब तक भटकूंगी
मैं इन अंधेरों में
कब आयेगा सूरज
जो मुझे अपने
आगोश में भर लेगा
चूम लेंगी मुझे
उसकी किरणें
और मेरा अंतःकरण
आलोक से भर जायेगा।

घर–दफ्तर

आकाश में टंगे से हैं
शहरों के घर
जहां आंगन नहीं
पिछवाड़ा नहीं
दीवारें ही दीवारें हैं
चारो ओर
ऊंची भव्य
अट्टालिकाओं तक
पहुंचने के लिए
अंतहीन सीढ़ियां!
आंगन और पिछवाड़े के बिना
घर, घर सा नहीं लगता है
एक दफ्तर लगता है।
जहां कुर्सी पर टिके रहते हम
भकने के बावजूद भी
पसार नहीं पाते पांव

सुमन शेखर
नजदीक पेट्रोल पंप
ठाकुरद्वारा, पालमपुरा
जिला–कांगड़ा हि.प्र.
पिन–176102
मो–09418239187

काव्य

पिंजरा

कहीं भी जाऊं, मेट्रो की गंध हवा में फैली है
मेरी जड़ें सांसें खींचती इन सीमेंट–ईटों के बीच।
ये बीते दिनों की बातें हैं जब हमारे पूर्वज
भरी बरसात और आजाद हवा में सांसे लिया करते थे।
बरगद की शाखों पर बैठे मेहमान,
चहचहाते व गीत गाते थे।
हवाओं की तरंगों में आबाद थे
मानव भी नटराज थे अपनी लय व आनंद में।
आह! उन घातक हवाओं ने मुझे कैद कर दिया है
मेरी जड़ों को सीमेंट और ईटों के पिंजरे नसीब हैं।
मेरे कुछ पड़ोसी हैं जिन्हे पाकर मैं प्रसन्न नहीं,
बिल्कुल नहीं।
मेरे पड़ोसियों की आबादी बढ़ रही है–
सीमेंट और ईटों की दीवारों में कैद होने को....।

के.प्रिया
अधिवक्ता हाईकोर्ट चेन्नई
'ईरावीइलम'
31/156, पालनिप्पा, नागर
सुरामंगलम, सालेम,
तमिलनाडु–636005
मो–09443216216

अन्तःमन

सोच रहा हूं अन्तःमन से, जीवन जीना है अब कैसे?
चारो ओर अंधेरा है, भौतिकता का डेरा है।
यह भी कोई जीवन है, जीना जिसका मुश्किल है
खोज रहा हूं अपनों को, मौलिकता का टोटा है।
जाति पंथ की उथली तलैया, डूब रही है धर्म की नैया
राम रहीम सब ईश के बंदे, जाति पंथ तो धोखा है।
कहां गई वो मानवता, जिसमें जीवन दर्शन है
जात–पात से ऊपर उठकर, जाति धर्म को छोड़ा है।
कृत्रिमता से सना हुआ, मानव का व्यवहार हुआ
नैतिकता कैसे अपनाऊं, आधुनिकता का रोना है।
यह तन तो नश्वर है, जीवन फिर भी जीना है
उमंग लौटाती मानवता, संभल जा अभी भी मौका है।
सोच रहा हूं अन्तःमन से, जीवन जीना है अब कैसे?

विमल कुमार जैन
व्याख्याता(गणित)
सनसिटी, जगदलपुर
जिला–बस्तर छ.ग.
मो–09424283971

काव्य

मां

देख रही हूं सपनों में जिसे
अपने ख्वाबों ख्यालों में जिसे
सोच रही हूं और पूछ रही हूं ईश्वर से,
ये मां कैसी होती है?
मेरी तड़प देखकर....ईश्वर ने दिया जवाब,
जिसकी कोख से मानवता जन्मे.....
जिसकी गोद में सृष्टि समा जाये.....
जिसका स्पर्श बड़ी से बड़ी चोट को
सहलाकर ठीक कर दे.....
जिसका प्यार बड़े से बड़े सदमे से उबार दे....
जिसके द्वारा जिन्दगी संवरे
जो बच्चों को दुःख को ज्ञात कर ले.....
जो मन की आंखों से बच्चों को देख सके
दूर बैठ कर भी उन्हें दुआ दे सके
नाजुक हो पर मुश्किल में काम आये....
जिसके आंचल के तले,
हम खुद को सुरक्षित महसूस करें....

सुमय्या काशिफ
वैशाली नगर
नागपुर (महाराष्ट्र)
मो–09049310771

जिसकी आंखों में,
हम बच्चों के लिए प्यार ही प्यार हो....
जिसके आंसूओं में,
हम अपनी सारी गलतियां धो बैठें....
जिसका ममता भरा हाथ,
सर पर फिरते ही सुकून की नींद आये.....
गढ़ रही हूं, मैं मां को,
अपने लफ्ज़ों में, जिसे देवी का रूप दे इंसान।
ठेस तो बहुत पहुंचाई है
उस देवी को मैंने....
पर क्या आज भी उठता होगा,
उसका हाथ मुझे आर्शिवाद देने को?
क्या मांगती होगी आज भी वो,
दुआ मेरी सलामती को?
पूछ रही हूं ईश्वर से,
एक बार मिला दे मुझे मेरी मां से....
फिर शायद कोई तमन्ना नहीं बाकी,
जीवन जीने की

काजल चुराना

रूपसी ने
आंख का काजल चुराया
बुजुर्ग बोला
इस उम्र में तुमने
काजल क्यों लगाया।

वातावरण

उम्र से पहले
लड़की का जवान होना
पिता को डरा रहा,
अखबार खबरें गिना रहा।

वार करना

विकृत मानसिकता
सम्बंधों पर
कुठाराघात कर रही,
देह पर वार कर रही।

पानी का संकट

पउसका फौव्वारे में
नहाना जारी,
शहर में
पानी का संकट जारी।

नियमों का उल्लंघन

बाइक में तीन सवारी
बिना हेलमेट के
रफ़्तार जारी।

सलाह

युवा कालेज की फीस को
मौज–मस्ती में उड़ायें,
प्रेमिकाएं
अवसाद न बन जायें।

जमीन सुंघाना

पहलवान लड़की ने
हाथ मिलाते ही
पति को–
जमीन सुंघायी
पति ने फिर कभी
उसके काम में
टांग न अड़ायी

चक्रधर शुक्ल
एलआईजी–1
सिंगल स्टोरी,
बर्रा–6, कानपुर–27
मो–09455511337

आमंत्रण

आओ
मैं तुम्हें,
अपने मौन भाषण में
बस,
एक बार,
तुम मेरे जख़्मों की
गहराई में उतर जाओ।
मेरे
अंतर में
अपनी छवि पाकर तुम,
अचंभित रह जाओगे।
पर मेरी पीड़ा
जो तुम्हारी ही देन है
क्या
तुम उसे
महसूस कर पाओगे ?
क्या
तुम्हारा हृदय
मौन में
दर्द देखना जानता है ?
क्या पता
तुम्हारा हृदय
मुझ तक आकर
मेरी पीड़ा देख पायेगा ?
या
उसे कुछ और बढ़ाकर
लौट जायेगा ?
लगता है
मेरा दर्द
तुमसे
नहीं समझा जायेगा।
और
शब्दों के अभाव में
मेरा सबकुछ
अनकहा ही रह जायेगा।

तारा

तनहा थी मैं बैठी हुई,
किसी उलझन में थी खोई हुई।
यादों का एक झोंका आया,
धीरे से मेरे विचारों को सहलाया।
स्मृतियों के क्षितिज में एक 'तारा'
तनहा, अकेला, बेसहारा।
कभी अतीत में
कभी वर्तमान और कभी भविष्य में,
खोया हुआ एक तारा।
ये तारा टूटकर गिरने को था,
कि उड़ते हुए बादल ने उसे थामा।
क्यों गिरते हो विचारों के बादल से,
गिरोगे तो गिरेंगी बूंदें।
बादल के वचन सुन तारा
कुछ विचार किया गुमसुम।
और पुनः चमकने लगा,
विचारों के आसमान पर।
उलझन मेरी सुलझा गया,
नव उत्साह से मेरा पूर्ण किया।

साथी

सबने देखा मुझको साथी,
मैंने देखा तुमको साथी।
आता है स्नेह तुम पे साथी,
है शिकवा भी तुमसे साथी।
है शिकायत भी तुमसे साथी
ये कैसा है रिश्ता साथी।
ये कैसा है नाता साथी,
बिन डोर का है बंधन साथी।
है प्रेम का ये बंधन साथी,
है हाथों का कंगन साथी।
है होंठों की लाली साथी,
है अधरों की मुस्कान साथी।
है आंखों का अंजन साथी,
है नयनों का सपन साथी।
देखो अब तुम मुझको साथी,
मैं देखूं बस तुमको साथी।

पूर्णिमा सरोज
व्याख्याता
मेटगुड़ा, जगदलपुर
जिला–बस्तर
मो–09424283735

ग़ज़ल

यूं मुझे तनहाई देगा,
अंतिम बार विदाई देगा।
बहुत शोर है मेरे भीतर,
कुछ भी नहीं सुनाई देगा।
पहले लूटेगा जी भर के,
बाद में वो भरपाई देगा।
लहू पी रहे हो निर्बल का
अंदर से उबकाई देगा।
सत्ता के मद में जो अंधे
कैसे उन्हें दिखाई देगा।
होश नहीं, सच बोल रहा हूं
ताबड़तोड़ सफाई देगा।
बंटे भक्त औ' बहस तेज है,
ईश्वर देगा..... साई देगा।

ग़ज़ल

जो मेरे दीवाने होंगे
वो मुझसे अंजाने होंगे।
भीतर कत्ल की ख्वाहिश होगी
बाहर प्रेम तराने होंगे।
आये है जो शमां बुझाने
वो कैसे परवाने होंगे।
नाबदान में पड़ा है उल्टा
पास में ही मैखाने होंगे।
बच्चे तो क्या उड़ पायेंगे
अंडे यहां उड़ाने होंगे।
ख्वाबों में रोटी से बातें
ऐसे ख्वाब सजाने होंगे।
मिलते ही गरियाने लगते
मतलब दोस्त पुराने होंगे।
हम दोनो में बातें होंगी
दुनिया में अफसाने होंगे।

नज़्म सुभाष
एस.के.डी. प्लाजा, ई ब्लॉक, सब्जीमंडी,
राजाजीपुरम, लखनऊ
मो.–09235792904

ग्रीनहंट के डंडे

यह नदी झरने
कब तक सहते
मौसम के हथकंडे
जंगलों की
पीठों पर पड़ रहे
ग्रीन हंट के डंडे।
जन्म ले रही है नई सभ्यता
आदिवासी कोखों से
सीखा है सबकुछ आज ने
ऐतिहासिक धोखों से
उखड़े है
लौहजनित आंधी में
अब हरियाली के झंडे।
जब क्यारियों की देह पर ही
आये दनदनाते बूट
चीखों में तब्दील चुप्पियां
रचती ताण्डव चौखूंट
काम नहीं आये
शांतिमंत्र भी
विफल हुऐ काजी पंडे।

कृष्ण मोहन 'अम्भोज'
नर्मदा निवास, न्यू कालोनी,
पचोर–465683
जिला–राजगढ़(म.प्र.)
मो.–07566695910

बुनियादों में दरारें

शिखरों के
गड़ने से आई
बुनियादों में दरारें।
छाया लुभा रही निशदिन
हमें पराये सायबानों की
सुध–बुध भूल गये हैं अपने
इन दीमक लगे मकानों की
मददों के
अंधे चढ़ बैठे
तो अपने ही पंख उतारे।
शहर हो रहे गांव हमारे
अब मानव ढला मशीनों में
फसलों की एवज कलपुर्जे
उगने लगे हैं जमीनों में
सपने सारे
हांफ रहे हैं
मृगतृष्णा के मारे–मारे।

तेरे आंचल सी नहीं

या तो गृहलक्ष्मी कहा, या फिर पग की धूल।
इन दोनो ही बातों में, मरदों ने की भूल।
जिस नारी के सामने, झुके कभी यमराज,
हर पल नर के सामने झुकती है वह आज।
कभी अहिल्या का रूप धर बन बैठी पाषाण
कभी जानकी बन किया, अग्नि का आहवान।
छांव बनी चलती रही, सहती रही अभाव,
नारी तेरे भाग में कब होगा बदलाव।
मैंने ढूंढा हर कहीं हर बस्ती हर गांव
तेरे आंचल सी कहीं मुझको मिली न छांव।
बहू भटकती धूप में झुलसा नहीं शरीर
सास ननद के बोल ने दिया कलेजा चीर।
महिलाओं की जिन्दगी, समझौते का नाम,
हर रिश्ते में कर रही, काम, काम बस काम।
मां तेरे आंचल सी नहीं, दुनिया में विश्राम।।

रोशन रहे आशियां

धुल गई है मेंहदी, छाले उकेर कर
सख्त हो गई हथेलियां, उम्र के साथ।
उम्र के साथ पांवों की बिवाईयां
गहरा गई है।
आंगन चौका बुहारते–बुहारते
लहराते केशों की स्याह सघनता
चांदी सी हो गई है।
धुआं–धुंआ हुई उसकी,
आंखों की रोशनी।
मंद पड़ गई इस प्रयास में
कि रोशन रहे आशियां
उसके जाने के बाद भी।
उसके जाने के बाद भी।।

श्रीमती सरिता पाण्डेय
श्री जी.पी.पाण्डेय
अभिषेक सर्जिकल एंड डेन्टस्,
अनुपमा रोड, जगदलपुर

अजब कहानी

कहीं होंठो पे हंसी, कहीं आंखों में पानी है
कुदरत ने ही लिखी, कर्मो की कहानी है...
कभी अपने पराये, कभी गैर भी अपने से लगते
कोई समझ न पाये, कुछ हकीकत, कुछ सपने लगते
दिखती है रीत वही, पर प्रीत तो पुरानी है...
बीज कहीं पर नष्ट हुआ, मगर कहीं पे फूल खिला
कहीं किसी को कष्ट हुआ, किसी को सुख भरपूर मिला
क्या गलत, क्या सही, दुनिया इससे अनजानी है...
कोई मिल गये किसी से, कोई मिलकर भी हैं बिछड़े
कहीं कली खिली खुशी से, कहीं बाग के बाग हैं उजड़े
मंजिल हमको कहां दिखी, मिट्टी पर आज जवानी है...
कभी पकड़ लिया, कभी सहज सबकुछ छोड़ दिया
सभी ने मना किया, क्यों ईश्वर से नाता तोड़ लिया
मौत तो सस्ती बिकी, मगर मंहगी हुई जिन्दगानी है...
दौर जो तुमने दिया, कभी इससे गुजर कर देखो
कष्टमय जीवन जिया, जरा मझधार में उतरकर देखो
घड़ी न बाकी बची, लो मिट्टी अब नाम निशानी है...

रामचरण यादव 'याददाश्त'
प्रधान सम्पादक–'नाजनीन'
सदर बाजार बैतूल(म.प्र.)–460001
मो.–09406547310

ग़ज़ल

यूं तो हरेक शख़्स की तक़दीर है जुदा।
आंसू सभी के एक–से पर पीर है जुदा।
हो बंन्दगी या शाइरी या मयकशी जनाब,
ख़्वाबो के साथ जीने की तदबीर है जुदा।
आज़ाद कौन है यहां हर सांस है कैद,
हां, सिर्फ़ इतना फ़र्क है जंजीर है जुदा।
गिरगिट–सा रंग लोग बदलते हैं आजकल,
भीतर फ़रेब बाहरी तसवीर है जुदा।
गीता हो या कुरान या इंजील हो मगर
इल्हाम सबका एक है तहरीर है जुदा।
मतलबपरस्त आज हैं सब हुक्मरान हैं,
अभिनय सभी के एक–से तक़रीर है जुदा।
शाहेजहां का ताज या मुफ़लिस की झोपड़ी,
है अल्ग़रज़ तो ख़ाक ही तामीर है जुदा।
गुज़रे दिनों की याद में आहें भरें न आप,
हर उम्र, वक़्त, दौर की तासीर है जुदा।

प्रो.भगवानदास जैन
पूर्व अध्यापक, हिन्दी विभाग
बी–105, मंगलतीर्थ पार्क, कैनाल के पास, जशोदानगर
रोड, मणीनगर (पूर्व) अहमदाबाद–382445
मो.–09426016862

काव्यः लालाजी की याद में

लाला जी के याद में

वे कवि थे, लाला जी थे, जगदलपुरी थे ।
किरणों जैसी चपल, उज्जवल,
धवल उनके सिर के बाल
कामगार सी थकी, झुकी, गहरी उनकी ऑखें
शब्दों में, भाषा में, रूप में, धूप में वे थे
वे चलते, सोचते, लिखते, बोलते
दीन दुखियों में विचरते
उनके पैरों के पोर पोर में
धूल कण चिपके रहे अन्त तक
भावों का अथाह जल था उनके भीतर
उनकी कवितायें हल्बी, छत्तीसगढ़ी, भतरी, हिन्दी में
छन्द में बन्द में, महलों में, कोठरियों में,
नदी नालों व जंगलों में
सब जगह
वे इस वनांचल के स्थापित कवि थे
सब अपना सौंप देते थे
वे जैसे पेड़ आम का इस पृथ्वी पर
फल देते थे मुरझाए भी रहे
कई दिनों तक जाने से पूर्व
दुख–सुख, अपमान–मान सब सहे
चल दिए एक दिन कहते हुए
और क्या चाहिये मुझे
सोचता हूं
उनके सर का सुनहरा सजीव उजला बाल
रह तो नहीं गया
यहॉ फहराता हुआ।

सुरेश विश्वकर्मा 'चितेरा'
ईसाई कब्रीस्तान के सामने,
फ्रेजरपुर, जगदलपुर छ.ग.
मो.–09424293971

स्त्री होने का अहसास–1

भूलना चाहती हूं मैं
अतीत की परछाईयों में छिपे
अपने उजास भरे चेहरे को
जो न जाने
कितने–कितने सपनों को
बांध रखी थी पोटली में।
मेरे तांबई चेहरे के पीछे का सच
जिनके उजियारे से
कभी झुमा करती थी नदी
झुमा करते जंगल
कभी–कभी अनगढ़ सी परछाईयां भी
झुमा करती थी आस–पास।
भूलना चाहती हूं मैं वे दिन
जब काम देने के बहाने
गांव की लड़कियों को
बुलाया करते थे ठीकेदार
अलसुबह उनकी चाल देख
पूरी तरह सिहर उठती थी मैं
खुद के साथ हो गुजरने की आशंकाएं
मेरे उजास भरे चेहरे को
तांबई होने को मजबूर करता।
भूलना चाहती हूं मैं
महिने के वे अंतिम दिन
जब फूट पड़ती हैं स्रोतें
और कपड़े का एक टुकड़ा
लालायित हो उठता है उसे सोखने को।
हाथों में गांडीव लिए
ये भी भूलना चाहती हूं मैं
कि, मेरे अंदर भी उठते हैं ज्वार
जो हर रात कराते हैं मुझे
स्त्री होने का अहसास।
स्त्री होते हुए भी
भूलना नहीं चाहती हूं मैं
रोज उगता सूरज
क्योंकि, उजियारे के फैलते ही
शहरी लोगों की नजरें
रेंगा करती हैं हमारे आस–पास
जो न जाने कौन से पहर
बुन ले हमारे जिस्म पर
मकड़े–सा जाल।

स्त्री होने का अहसास–2

हां वह जरूर आयेंगे
तुम्हारे पास
तुम्हारे स्त्रीत्व की परीक्षा लेने
क्योंकि उन्हें नहीं पता
तुम्हारे भीतर का इतिहास
नहीं पता,
तुम्हारी नसों में भी बह रहे हैं
पृथ्वी के अंदर पाये जाने वाले
लौह तत्व।
हां वह जरूर आयेंगे
तुम्हारे पास
तुम्हे परखने,
वह परखेंगे
तुम्हारे अंदर छिपे
रहस्यमयी आकांक्षाओं को
कैरेटोमीटर से
ताकि समझ पाएं
अंदर छिपी अशुद्वियां
तुम्हे देखकर
तैर उठती होंगी
उनके अंदर वासनाएं
लेकिन,
तुम्हारे स्त्रीत्व की परीक्षा लेने से
नहीं समझ पायेंगे
स्त्री होने का अहसास।

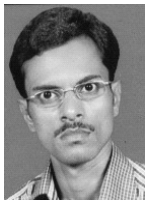

तरूण कुमार लाहा
गांव–बारा
डाकखाना–बारापलासी
जिला–दुमका(संथाल परगना)
झारखण्ड–814101
मो.–07250977088

फार्म–4

प्रेस तथा पुस्तक पंजीयन अधिनियम की धारा 19 डी के अंतर्गत अपेक्षित 'बस्तर पाति' नामक पत्रिका से संबंधित स्वामित्व और अन्य बातों का विवरणः–

1. प्रकाशन का स्थान–	: सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर छ.ग.
2. प्रकाशन की आवर्तता–	: त्रैमासिक
3. मुद्रक का नाम–	: सनत कुमार जैन
क्या भारतीय नागरिक है?–	: हां
4. पता–	: सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर छ.ग.
5. प्रकाशक का नाम–	: सनत कुमार जैन
क्या भारतीय नागरिक है?–	: हां
5. सम्पादक का नाम–	: सनत कुमार जैन
क्या भारतीय नागरिक है?–	: हां
पता–	: सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर छ.ग.
6. उन व्यक्तियों के नाम और पते, जो	: सनत कुमार जैन
पत्रिका के मालिक और कुल प्रदत्त	: सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास,
पूंजी के एक–एक प्रतिशत से अधिक	जगदलपुर छ.ग.
के हिस्सेदार या भागीदार हैं–	

मैं सनत कुमार जैन, एतद् द्वारा घोषणा करता हूं कि मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार उपयुक्त विवरण सही हैं। **सनत कुमार जैन**

प्रकाशक / मुद्रक / सम्पादक / स्वामी

नक्कारखाने की तूती

यह शीर्षक हमारे उन विचारों के लिए है जो लगातार हमारा दम घोंटते हैं परन्तु हम उन्हें आपस में ही कह सुन कर चुपचाप बैठ जाते हैं. चुप बैठने का कारण होता हैं हमारी 'अकेला' होने की सोच! इस सोच को तड़का लगता है इस बात से कि 'सिस्टम ही ऐसा है क्या किया जा सकता है. और ऐसा सोचना पागलपन है.' हर पान की दुकान, चाय की दुकान और ट्रेन के सफर में लगातार होने वाली ये हर किसी की समस्या होती है, ये चिन्ता हर किसी की होती है. और सबसे बड़ी बात कि समस्या का हल भी वहीं होता है. ऐसी समस्या और उसका हल जो दिमाग को मथ कर रख देता हैं उनका यहां स्वागत हैं. तो फिर देर किस बात की कलम उठाईये और लिख भेजिए हमें.

बैंकों की लूट

न जाने कबसे देश का गरीब किसान और मजबूर महाजनों के चंगुल में फंसा रहा। ऐसा चंगुल, ऐसा त्रुटिहीन जाल जिसमे एक बार फंसे हुए आदमी का बचना नामुमकीन। ऐसी महाजनी व्यवस्था जो एक बार फंसे व्यक्ति को जोंक से भी बदतर तरीके से चूस कर तड़पाये। उस महाजनी व्यवस्था के कर्जे पीढ़ियों तक चुकाये जाते रहे तब भी खत्म न हुए। भूमिहीन होने के बाद अपने बच्चों को गुलाम बनाकर बेचे, उन्हीं महाजनों को बेचे तब भी उनके कर्ज खत्म नहीं हुए! ऐसी लूटमार वाली व्यवस्था में न जाने कितने लोग जानवर बने हुए पीढ़ी दर पीढ़ी जी रहे थे तब भी आवाज उठाने वाला कोई न था। इस व्यवस्था को आजाद भारत में भी चलते हुए कई साल बीत गये तब न जाने कैसे सरकार की आंखों की नींद पर डाका डाला और बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। अब लोगों को ऋण लेने के लिए एक और रास्ता खुल गया था। सूरज की उजली किरणों से गरीबों के घर रोशन हो रहे थे। पर क्या ऐसा हुआ! बैंक, महाजनों के सभ्य तरीकों से पेश आने वाले क्लोन नहीं बन गये ? महाजन कैसे अपनी सत्ता छोड़ देते वे ही तो घुसे हुए थे राष्ट्रीयकरण के वक्त। पहले महाजनों के एक्का दुक्का केस होते थे जिसमें वे लोगों को कर्जे के लिए उकसाते थे या परिस्थितियां गढ़ते थे। और अब! अब तो सारे आम बैंक लोगों को कर्जे में फंसाने का प्रयास कर रहे हैं। जिस भावना से बैंको का राष्ट्रीयकरण किया गया था वे आज उस भावना के ठीक विपरीत कार्य कर रहे हैं। ब्याज चक्र के साथ नये–नये कर्ज देते जाते हैं और फिर वही लाचार स्थितियां पैदा कर देते है। बैंको की बेईमानियों का कच्चा चिठ्ठा तैयार किया जाय तो महाभारत और रामायण सरीखे ग्रंथों की मोटाई भी पार हो जायेगी। उन बेईमानियों में से एक ताजा तरीन बेईमानी है– ATM की सुविधा! 'बैंक अपने ग्राहकों को सुविधा देने के लिए प्रतिबद्ध है।' 'हम आपकी क्या सेवा कर सकते हैं ?' 'ग्राहक देवो भवः' और न जाने क्या–क्या कोटेशनों से बैंक अपना मोटो बनाते हैं अपने बैंक की दिवारें रंगते हैं। वास्तव में ATM ग्राहकों को सुविधा देने का एक बेहतरीन तरीका है। इस सुविधा से बैंकों में लगने वाली लाइन से ग्राहक बच रहा है। ATM पर जाकर लोग आसानी से पैसे निकाल लेते हैं। जगह–जगह ATM खुलने से बैंक तक जाने का वक्त बच रहा है। इस तरीके से कुल मिलाकर लोगों का समय बच रहा है। पर क्या यह घोषणायें सही है ? यह दावा गर्वोक्ति सही है ? बैंक किस आसानी से लोगों को बेवकूफ बना रहा है सोचें। बैंक अपनी सुविधायें लोगों को दे रहा है या फिर खुद के लिए सुविधाजनक वातावरण बना रहा हैं ? बैंक अपने यहां कर्मचारियों की नियुक्ति न कर ग्राहक से ही काम करवा रहा है– कह रहा है अपने खातों का संचालन खुद करें। अपने खाते खुद खोले, खुद ही FDR बनायें। ये बातें किस हद तक ग्राहकों के लिए सुविधायें हैं ? ये तो सरासर ग्राहकों का शोषण है। हमारे ही पैसों से यानी ग्राहकों के पैसों से बैंक चल रहा हैं और ग्राहक को इन पैसों को जमा करने में परेशानी, निकालने में परेशानी, घण्टों समय खराब करके लोग बैंकों को पाल रहे हैं और बैंक है कि नये कर्मचारियों की भर्ती न कर, नये बैंक न खोलकर जनता को दूसरी ही तस्वीर दिखा रहे हैं। सरकार जनहित में कार्य करने का ढोंग करके उससे पैसा बनाने में लगी है। अगर बैंक लोगों से पैसे लेकर उस पैसे से कमा रहा है तो व्यवसाय है और गली के नुक्कड पर चाय बेचने वाला भी मुफ्त में पानी पिलाता है, चार ईट रखकर चाय पीने वालों के लिए बैठने की व्यवस्था करता है। तो फिर जनता को जोंक बनकर चूसने वालों के लिए कोई धर्म नहीं हैं ? न तो हर बैक में हर ग्राहक के बैठने की सुविधा है न ही पानी है। न ही फार्म भरने में मदद के लिए आदमी है न तो पेन दिया जाता है। इसके बाद भी हर मूलभूत सुविधा का चार्ज लिया जाता है। पासबुक 20–50 रूपया, गुमने पर FIR कराओ यानि पुलिस को दक्षिणा, खाता खुलवाने पर मिनिमम बैलेंस रखना जरूरी ATM सुविधा का 100 से 200 रूपया, FDR रिन्यूअल नहीं कराया तो उस तिथि से आगे का ब्याज नहीं मिलेगा। ATM से पैसा निकालो तो पैसा कटेगा। उसी शहर की दूसरी ब्रांच से पैसा जमा करने पर चार्ज काटना। चालू खाते पर बैंक की सुविधा देखें, स्टेटमेन्ट लेने का पैसा, डीडी बनाने का पैसा, डीडी केन्सिल कराने का पैसा, मिनिमम बैलेंस कम होने पर पैसा काटना, फेहरिस्त लंबी होती जायेगी। इस आलेख का विषय है ATM! ATM के उदाहरण से जनता जाने कि बैंक किस तरीके से लूट मचा रहे हैं। बैंकों द्वारा हर

साल अरबों खरबों कमाने के बाद भी उनकी कमाई कहां जा रही हैं ? खुद के लिए नये टेबल कुर्सी खरीदने में, खुद के लिए AC लगाने में, खुद के लिए केन्टिन खोलने में, खुद की तनखा बेहिसाब बढ़ाने में, खुद के लिए कम दर पर लोन दिलवाने में। नया बैंक यदा–कदा खुलता है। ATM धड़ल्ले से खोले जा रहे है। वे तो पुरानी मान्यताओं पर चलते हुए 63–64 के बाद से आज ब्याज वसूलने और ग्राहक की जेब काटने पर जरा भी विचार नहीं करते हैं तो फिर वे नई मान्यताओं के चलते अपने लिए सुख सुविधाओं का वातावरण क्यों बनाते हैं। वे भी रहे थे न पुरानी मान्यताओं के अधीन! जरा–जरा सी लगने वाली राशि दिन भर में ही करोड़ों हो जाती हैं। मान लो ATM से पैसा निकालने पर 30 रूपये लगते हैं। एक ATM से दिनभर में 100 आदमी औसत रूप से पैसा निकालते होंगे तो देश के 50,000 ATM के लिए सरचार्ज की राशि हुई – 30*100= 3,000 रूपये प्रतिदिन प्रति ATM! यानि एक माह की राशि 3000*30= 90,000रूपये। इसके बाद पूरे देश के ।ज्ड का हिसाब होगा 90000*50000= 450000000 रूपये।(मात्र पैंतालिस करोड़ रूपये)

बैंक नये बैंकों को खालने की राशि तो बचा ही रहा है और साथ में प्रति माह प्रचालन खर्चों को भी बचा रहा है। प्रति बैंक एक बाबू, एक मैनेजर, एक चपरासी का खर्च, बिजली, पानी, भवन किराया, केन्टीन का खर्च, अपने कर्मचारियों को दिये जाने वाले भत्तों का खर्च (होम अलाऊंस TA.DA अखबार, कूरियर स्टेशनरी आदि) बचा रहा है जो कि प्रतिमाह कम से कम 1,50,000 रूपये होता हैं और अब उसकी लालची नजरें उपभोक्ताओं को लूटने पर लगी हैं। अपनी इस बात को उपभोक्ताओं को न बताकर वो बता रहा ATM की स्थापना के खर्चे, गार्ड का खर्चा, किराया, बिजली आदि। ATM से इस पैसे निकासी का, पैसा लेने को आधार बनाकर भविष्य में बैंक के भीतर जाकर पैसा निकालने का भी चार्ज लगाया जायेगा। जो कि करेन्ट अकाउंट में छोटे नोट लेने पर लिया जाता है। बार–बार यही ध्यान आता है कि हमारा ही पैसा और हमें सुविधा नहीं। हमारे छोटे–छोटे पैसों के आधार पर बड़े लोन बांटे जाते हैं। हमारे पैसों से ही यहां पैसों की तरलता बनी रहती है इसके बाद भी सेविंग अकाउंट वाले ही उनकी आंखों में खटकते हैं। और बैंक वाले हैं कि लोन लेने वालों को सर पर बैठाते हैं।

पत्रिका मिली

सुखनवर
सम्पादक–अनवरे इस्लाम
मूल्य–20 रूपये
पता–सी–16, सम्राट कालोनी
अशोका गार्डन, भोपाल–462023
संपर्क–09893663536

सद्भावना दर्पण
सम्पादक–गिरीश पंकज
मूल्य–20 रूपये
पता–28 प्रथम तल एकात्म परिसर
रजबंधा मैदान, रायपुर–492001
संपर्क–0925212720

हिन्दी चेतना
सम्पादक–सुधा ओम ढींगरा
मूल्य–50 रूपये
पता–पंकज सुबीर
पी.सी.लैब, सम्राट काम्पलेक्स
बेसमेंट, बस स्टैण्ड के सामने
सीहोर–466001
संपर्क–09977855399

साहित्य समीर दस्तक
सम्पादक–कीर्ति श्रीवास्तव
मूल्य–25 रूपये
पता–242 सर्वधर्म कालोनी
सेक्टर–सी, कोलार रोड
भोपाल–462042
संपर्क–09826837335

विपाशा
सम्पादक–अरूण कुमार शर्मा
मूल्य–15 रूपये
पता–सम्पादक–विपाशा,
भाषा एवं संस्कृति विभाग, हि.प्र.
39–एस.डी.ए., शिमला–171009
संपर्क–01772626614

शोध उपक्रम
सम्पादक–डॉ.रामकुार बेहार
मूल्य–100 रूपये
पता–छत्तीसगढ़ शोध संस्थान,
370, बेहार मार्ग, सुन्दर नगर,
रायपुर–492001
संपर्क–09826656764

दिवान मेरा
सम्पादक–नरेन्द्रसिंह परिहार
मूल्य–20 रूपये
पता–सी004, उत्कर्ष अनुराधा,
सिविल लाईन्स
नागपुर–440001
संपर्क–09561775384

जर्जर कश्ती
सम्पादक–ज्ञानेन्द्र साज
मूल्य–20 रूपये
पता–सम्पादक–जर्जर कश्ती
17/212, जयगंज,
अलीगढ़–202001
संपर्क–09219562656

परिधि
सम्पादक–डॉ.अनिल कुमार जैन
मूल्य–50 रूपये
पता–हिन्दी–उर्दू मजलिस
हनुमान मंदिर के पास सराफा,
बड़ा बाजार सागर–470002
संपर्क–09993250338

अविराम साहित्यिकी
सम्पादक–डॉ.उमेश महादोषी
मूल्य–25 रूपये
पता–121इन्द्रापुरम, बीडीए
कालोनी के पास, बदायूं रोड,
बरेली उ.प्र.
संपर्क–09458929004

सृजन संदेश
सम्पादक–जयलाल प्रसाद दानी
मूल्य–100 रूपये वार्षिक
पता–सरस्वती शिक्षा संस्थान छ.ग.
विज्ञान महाविद्यालय के पीछे,
सरस्वती विहार रायपुर–492010
संपर्क–07712262770

साहित्यिक उठापटक

काव्यगोष्ठि

बस्तर पाति के द्वारा आयोजित किये जाने वाले साहित्यिक कार्यक्रमों की श्रृंखला में दिनांक 21 दिसम्बर को इंद्रावती के तट पर स्थित महादेवघाट पर प्रकृति और काव्य का आनंद लिया गया। अंचल के प्रसिद्ध गजलकार ऋषि शर्मा ऋषि को नई ऊर्जा के साथ स्वरचित ग़ज़लें सुनाते देख सभी चकित थे। श्रीमती मोहिनी ठाकुर की क्षणिकाओं ने मन मोह लिया। शशांक शेण्डे की लालाजी पर आधारित कविता ने जहां आंखें नम कर दी वहीं नरेन्द्र पाढ़ी की हल्बी/भतरी कविता 'जीवना और काती' ने लोकबोली के प्रति रूचि जगाई। डा.चंद्रेश शर्मा और नरेन्द्र यादव ने छत्तीसगढ़ी गीतों से मन मोह लिया तो भरत गंगादित्य ने हल्बी गीत से यही प्रभाव डाला। अवधकिशोर शर्मा ने अपनी चिरपरिचित शैली में गोष्ठि का संचालन करते हुए मर्मस्पर्शी क्षणिकाओं से अपनी श्रेष्ठ रचनायें प्रेषित की। सनत जैन के द्वारा लघुकथाओं का पाठ किया गया। अंचल के प्रख्यात कार्टूनिस्ट सुरेश चितेरा द्वारा छत्तीसगढ़ी एवं हिन्दी रचनाओं का पाठ किया गया। विशिष्ट श्रोता के रूप में गायत्री आचार्य और भोला नाहक उपस्थित थे।

अगला आयोजन था नववर्ष की संध्या पर आकृति संस्था में काव्यगोष्ठि! देश के जाने माने चित्रकार श्री रविशंकर राय की अध्यक्षता में गोष्ठि ने अपना रंग जमाया। नववर्ष की शुभकामनाओं के बाद सुरेश चितेरा के कुशल संचालन में विमल तिवारी ने पैरोडी कविता वनवासी,वनवासी काटो नहीं/रूख झाड़ को, सुनाकर गोष्ठि का आगाज किया। क्षेत्र के हल्बी/भतरी के सर्वश्रेष्ठ रचनाकार नरेन्द्र पाढ़ी ने श्रोताओं की मांग पर जीवना कविता पुनः सुनाई, मय तुमचो जीवना/मय तुमचो काय नसायलीस। सनत जैन द्वारा हास्य कविता मलिका शेरावत के माध्यम से फिल्मी नंगेपन पर कटाक्ष करते हुए सुनाया–टेलर ने गिनीज बुक में नाम दर्ज कराया/अस्सी सेन्टीमीटर के ब्लाउज पीस से मलिका का पांच जोड़ी सूट बनाया। सुभाष पाण्डे ने क्षणिकाओं के माध्यम से मनमोह लिया। तुम्हारी बस्ती में बम बनाने के कारखाने हैं/मैं जयपुर हूं जहां नकली पैर बनाने के कारखाने हैं–सुनाकर अवधकिशोर शर्मा ने उपस्थित जन को सोचने पर मजबूर कर दिया।रऊफ परवेज जी ने नये साल पर रचनायें सुनाई–जब भी नया साल आता है/मौज मस्ती भी साथ लाता है। कार्यक्रम के अंत में सुरेश चितेरा ने वर्तमान परिवेश पर कटाक्ष किया–कौन यहां किसका है/शंकितकर रिश्ता है/आगे बढ़ने वाला/कदम कदम पिसता है।

कार्यक्रम समाप्ति पर बस्तर क्षेत्र के शिक्षा रत्न डॉ.के.के.झा साहब को याद करते हुए श्रद्धांजली दी गई। कार्यक्रम में अन्य उपस्थित जन थे के.आर.तिवारी, बंशीलाल विश्वकर्मा, वसंत चव्हाण, योगेन्द्र मोतीवाला, डॉ.चंद्रेश शर्मा, नरेन्द्र यादव, जोशी जी एवं भरत गंगादित्य।

उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान का सौहार्द सम्मान रमेश यादव को प्रदान

उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान की ओर से साहित्य के क्षेत्र में दिये जाने वाले राष्ट्रीय स्तर के सम्मानों में सन् 2013 का सौहार्द सम्मान मुंबई के लेखक–पत्रकार रमेश यादव को एक भव्य समारोह में प्रदान किया गया। सम्मान के तहत उन्हें शाल, ताम्रपत्र और दो लाख की राशि प्रदान की गई। रमेश यादव जी की कहानियां, कविताएं, लेख एवं अन्य रचनाएं देश की प्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं। साथ ही उन्होंने स्तंभ लेखन भी किया है। अनुवाद और बाल साहित्य के क्षेत्र में उनका विशेष कार्य है। उनकी चर्चित कृतियों में वैकल्य, बिम्ब–प्रतिबिम्ब, लोकरंग, महक फूल–सा मुस्कराता चल, चिरकणारे पंख (मराठी) इत्यादि का समावेश है।हिन्दी और मराठी दोनों भाषाओं में लेखन, अनुवाद के साथ–साथ स्वतंत्र पत्रकार के रूप में भी यादवजी सक्रिय हैं। महाराष्ट्र की लोककलाओं पर अध्ययन के लिए उन्हें संस्कृति मंत्रालय और संगीत नाटक अकादमी से शोध अनुदान तथा उनकी तीन कृतियों को महाराष्ट्र राज्य साहित्य अकादमी का पुरस्कार प्राप्त है। महाराष्ट्र सरकार के गुणवंत कामगार पुरस्कार से सम्मानित यादव जी सामाजिक और शैक्षणिक संस्थाओं से जुड़े हैं। महाराष्ट्र में प्रसिद्ध व्याख्यानमाला के आयोजन में भी वे सक्रिय हैं।

लखनऊ स्थित संस्थान के यशपाल सभागृह में संपन्न इस समारोह में देश के वरिष्ठ साहित्यकार दूधनाथसिंह, ममता कालिया, पुन्नीसिंह, विभूतिनारायण राय, डॉ. दिविक रमेश, प्रेम जनमेजय जैसे कई प्रमुख साहित्यकारों को राष्ट्रिय सम्मान से नवाजा गया साथ ही राज्य के विधा पुरस्कारों का भी वितरण किया गया। इस अवसर पर सांसद और राज्य के पूर्व मुख्यमंत्री मुलायमसिंह यादव ने समारोह की अध्यक्षता करते हुए कहा कि साहित्यकारों का सम्मान राष्ट्रीय कार्य है। साहित्य और संस्कृति की प्रगति के बगैर किसी भी राज्य और राष्ट्र की प्रगति अधूरी है। इसी सोच के तहत हमने अपने राज्य में बंद किये गये पुरस्कारों को पुनः नये सिरे से स्थापित किया है। समारोह में संस्थान के कार्यकारी अध्यक्ष उदय प्रताप सिंह, निदेशक डॉ. सुधाकर अदीब, मंत्री राजेन्द्र चौधरी, संपादक अनिल मिश्र इत्यादि मान्यवर लोग उपस्थित थे। शाम को राज्य सरकार के मुख्यमंत्री अखिलेशसिंह ने अपने निवास पर पुरस्कृत साहित्यकारों के लिए प्रीतिभोज का आयोजन किया था।

बस्तर पाति–साहित्य सेवा

''बस्तर पाति'' मात्र पत्रिका प्रकाशन ही नहीं है बल्कि इस क्षेत्र का साहित्यिक दस्तावेज है। हम और आप मिलकर तैयार करेंगे एक नई पीढ़ी; जो इस क्षेत्र का साहित्यिक भविष्य बनेगी। मिलजुलकर किया प्रयास सफल होगा ऐसा विश्वास है। हमें करना यह है कि लोगों के बीच जायें उनके बीच साहित्यिक रूचि रखने वाले को पहचाने और फिर लगातार संपर्क से उन्हें लिखने को प्रेरित करें। उनके लिखे को प्रकाशित करना ***''बस्तर पाति''*** का वादा है। रचनाशील समाज रचनात्मक सोच से ही बनता हैं, ये सच लोगों तक पहुंचाने के अलावा रचनाशील बनाना भी हमारा ही कर्तव्य है। लोक संस्कृति के अनछुए पहलूओं के अलावा जाने पहचाने हिस्से भी समाज के सम्मुख आने ही चाहिये। आज की आपाधापी वाली जिन्दगी में मानव बने रहने के लिए मिट्टी से जुड़ाव आवश्यक है। खेत–किसान, तीज–त्यौहार, गीत–नाटक, कला–संगीत, हवा–पानी आदि के अलावा घर–द्वार, माता–पिता से निस्वार्थ जुड़ाव की जरूरत को जानते बूझते अनदेखा करना, अपने पांवों कुल्हाड़ी मारना है, इसलिए हमारी सोच के साथ जीवन में भी साहित्य का उतरना नितांत आवश्यक है। साहित्य मात्र कुछ ही पढ़े–लिखे लोगों की बपौती नहीं है बल्कि लोक की सम्पदा है इसलिए सभी गरीब–अमीर, पढ़े–लिखे लोगों को जोड़ने की बात है। कला की प्रत्येक विधा हमें मानव जीवन सहेजने की शिक्षा देती है। हां, ये अलग बात है कि हम उसे समझना चाहते हैं या फिर समझाना नहीं चाहते हैं। लोक जीवन, लोक संस्कृति और लोक साहित्य, इन सभी में एक ही विषय समाहित है, एक ही आत्मा विराजमान है, इसलिए किसी एक पर बात करना ही हमें मिट्टी से जोड़ देता है, हमें मानव बने रहने पर मजबूर कर देता है।

मेरा निवेदन है कि हम अपने क्षेत्र के लोगों को ***''बस्तर पाति''*** से जोड़ें और उन्हें अपनी रचनात्मक भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहित करें। ***''बस्तर पाति''*** के पंचवर्षीय सदस्य बनकर इस साहित्यिक आंदोलन के सक्रिय सहयोगी बनें। ***''बस्तर पाति''*** को मजबूत बनाने के लिए आर्थिक आधार का मजबूत होना आवश्यक है। इस छोटी–सी किरण को सूरज बनना है और आप से ही संभव है, इसलिए रचनात्मक सहयोग के साथ ही साथ आर्थिक सहयोग प्रदान करते हुए आज ही पंचवर्षीय सदस्य बनें। अपने मित्रों को जन्मदिन और सालगिरह पर उपहार स्वरूप पंचवर्षीय सदस्यता दें। याद रखें, ज्ञान से बड़ा उपहार हो ही नहीं सकता है। हमारा पता है–

सदस्यता फार्म

मैं ***''बस्तर पाति''*** हिन्दी त्रैमासिक का पंचवर्षीय सदस्य बनना चाहता हूं। कृपया मुझे सदस्य बनायें। मेरा नाम व पता निम्नानुसार है–

नाम–.....

पता–.....

.....

.....

.....

शिक्षा–.....**अन्य जानकारी**.....

.....

मोबाइल नं.–.....**ईमेल**.....

500/– (रूपये पांच सौ) नगद/ मनीआर्डर / अकाउंट नंबर 10456297588 एसबीआई जगदलपुर (आईएफएस कोड 00392) द्वारा भेज रहा हूं। दिनांक–

हस्ताक्षर

प्रति,

''बस्तर पाति''
साहित्य एवं कला समाज
सन्मति गली, सन्मति इलेक्ट्रीकल्स, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर जिला बस्तर छ.ग. पिन–494001
मो.–09425507942 ईमेल–paati.bastar@gmail.com

बस्तर पाति के लिए विज्ञापन दर

पत्रिका में स्थान (मल्टीकलर)	***दर प्रति अंक***
पिछला पेज	
पूरा	***10000/–***
आधा	***5000/–***
पिछले से पहला	
पूरा	***5000/–***
आधा	***3000/–***
मध्य के दो पेज पूरे (ब्लैक एण्ड व्हाइट)	***20000/–***
भीतर के पेज में कहीं भी	
पूरा	***2000/–***
आधा	***1000/–***
एक चौथाई	***500/–***
सभी पेज में नीचे एक लाइन की विज्ञापन पट्टी	***10000/–***

ध्यान रखिए, आपका सहयोग साहित्य एवं हिन्दी के प्रसार में उपयोग होगा।

कविता कैसे बदले तेरा रूप

कविता का रूप कैसे बदलता है देखें जरा। नये रचनाकार ने लिखा था, नवीन प्रयास था इसलिए कसौटी पर खरा नहीं उतरा। उसी कविता को कैसे कसौटी पर खरा उतारें–

सीमेन्ट, रेत–गिट्टी से बना
या फिर मिट्टी गारे से बना
ये ढांचा घर तो नहीं।
जहां बिस्तर पड़े हैं
और जहां आलमारियों में कपड़े हैं
ये ढांचा घर तो नहीं।
जहां लोग रहते हैं
खाते हैं, पीते हैं, सोते हैं
ये ढांचा घर तो नहीं।
रंगा–पुता, चमक रहा
दीवार, आंगन में बंटा
ये ढांचा घर तो नहीं।

यही कविता कुछ अन्य पंक्तियां जोड़ने पर देखें कैसे रूप बदलकर रोमांचित करती है–

सीमेन्ट, रेत–गिट्टी से बना
या फिर मिट्टी गारे से बना
ये ढांचा घर तो नहीं।
जहां बिस्तर पड़े हैं
जहां आलमारियों में कपड़े हैं
ये ढांचा घर तो नहीं।
जहां लोग रहते हैं
खाते हैं, पीते हैं, सोते हैं
ये ढांचा घर तो नहीं।
रंगा–पुता, चमक रहा
दीवार, आंगन में बंटा
ये ढांचा घर तो नहीं।
जब घर का कोई
बाहर चला जाता है,
रोती हैं दीवारें
रोती है घर की हवा
तब वो ढांचा
बन जाता है
घर!!

श्री राकेश प्रियदर्शी की वाल से रेखाचित्र

फेसबुक वॉल से

याद किया तो

.....
एक साधारण मां–बाप
याद किया तो
सबसे पहले आये याद
फिर घास–फूस की छत
घास–फूस की जमीन
जमीन पर माटी का एक द्वार
द्वार के बाहर बाबा
द्वार के भीतर मां–
बाबा के बाहर मैं
मेरे भीतर मां
मां के बाहर–
घास–फूस के बीच खिलखिलाता एक असाधारण फूल

श्री जयप्रकाश मानस की वाल से दिनांक 27 जनवरी 2015

गज़ल

जिन्दा हैं रस्में यहां, जिन्दा यहां रिवाज
धर्म कहीं दिखता नहीं लगते सब नासाज़।
दिखी नहीं किरदार में ऐसी कोई बात
आज हमारे पास हैं केवल बस अल्फाज़।
बाहर से तो दिख रहा, अंदर भी कंगाल
कैसे मानें पास है कुछ पोशीदा राज़।
कोलाहल से भर गया सुनना भी दुश्वार
अपने –अपने राग हैं अपना–अपना साज़।
चले थे लेकर हम यहां हुस्नो–इश्क को साथ
कहां गई वे सूरतें जिन पर हम को नाज़।
कर ली हमने आंख बंद खींच लिए हैं हाथ
सारा कुछ वे ही करें जिन के सर पर ताज।
चलता ही क्यों जा रहा किसकी करना खोज
वो बाहर मिलना नहीं बैठ छोड़ के काज।
कर ली पूजा हर जगह और फेर ली जाप
निष्फल हो गये मंत्र भी मन निकला परवाज़।
दफन हुआ कल अभी, वो कल उसके हाथ
जो भी है बस यही है पास तेरे जो आज।
मेरा तो कुछ नहीं , न मैं हूं न तू
राजी जब मिटने को हों तब होगा आगाज़।

श्री अनिल जैन की वाल से दिनांक 21 जनवरी 2015

बस्तर पाति को मूर्तरूप देने वाले सहयोगी

संस्थापक सदस्यः—

श्री एम.एन.सिन्हा, दल्ली राजहरा छ.ग.
श्री आशीष राय, जगदलपुर, छ.ग.
श्री अमित नामदेव, रायपुर, छ.ग.
श्री गौतम बोथरा, रायपुर, छ.ग.
श्री कमलेश दिल्लीवार, रायपुर, छ.ग.
श्री सुनील अग्रवाल, कोरबा, छ.ग.
श्री संजय जैन, भाटापारा, छ.ग.
श्रीमती ममता जैन, जगदलपुर, छ.ग.
श्री सनत जैन, जगदलपुर, छ.ग.

परम सहयोगीः—

श्रीमती उषा अग्रवाल, नागपुर
श्री शशांक श्रीधर, जगदलपुर
श्री महेन्द्र जैन, कोण्डागांव
श्री आनंद जी. सिंह, दंतेवाड़ा
श्री योगेन्द्र मोतीवाला, जगदलपुर
श्री जगदीश मोगरे, जगदलपुर
श्री विमल तिवारी, जगदलपुर
श्री उमेश पानीग्राही, जगदलपुर

सदस्यः—छत्तीसगढ़ से—श्रीमती जयश्री जैन, जगदलपुर, श्रीमती रचना जैन, जगदलपुर, श्री शमीम बहार, जगदलपुर, श्री मनीष अग्रवाल, जगदलपुर, श्री श्याम नारायण श्रीवास्तव, रायगढ़, श्रीमती अशलेषा झा, जगदलपुर, श्री महेश बघेल, जगदलपुर, श्री नलिन श्रीवास्तव, राजनांदगांव, श्री ऋषि शर्मा 'ऋषि' जगदलपुर, श्री विरेन्द्र कुमार मौर्य, जगदलपुर, श्री टी आर साहू, दुर्ग, श्रीमती गुप्तेश्वरी पाण्डे, जगदलपुर, श्रीमती बरखा भाटिया, कोण्डागांव, श्री निर्मल आनंद, कोमा, राजिम, श्री कांति अरोरा, बिलासपुर, श्री राजेन्द्र जैन, भिलाई, श्री मिश्रा जी, जगदलपुर, श्री नूर जगदलपुरी, जगदलपुर, श्री हरेन्द्र यादव, कोण्डागांव, श्री महेन्द्र यदु, कोण्डागांव, श्री एस.पी.विश्वकर्मा, कोण्डागांव, सुश्री उर्मिला आचार्य, जगदलपुर, श्रीमती प्रभाती मिंज, बिलासपुर, श्रीमती सोनिका कवि, जगदलपुर, श्री जितेन्द्र भदोरिया, जगदलपुर, श्री बी.आर. तिवारी, महासमुंद, मे. होटल रेनबो, जगदलपुर, श्री संजय मिश्रा, रायपुर, श्री इश्तियाक मीर, जगदलपुर, माहेश्वरी यदु, जगदलपुर, श्री फिरोज बस्तरिया, जगदलपुर, श्री रवि माहेश्वरी, जगदलपुर, सुश्री सोनिया कुशवाह, जगदलपुर, श्रीमती पूर्णिमा सरोज, जगदलपुर, रूपाली सेठिया, कोण्डागांव, श्री राजेश श्रीवास्तव, जगदलपुर, श्री महेन्द्र सिंह ठाकुर, जगदलपुर, श्री चंद्रशेखर कच्छ, जगदलपुर, मे.पदमावती किराना स्टोर्स जगदलपुर, श्री दिलिप देव, जगदलपुर, तृप्ति परिडा, जगदलपुर, श्री धरमचंद्र शर्मा, जगदलपुर, श्री जी.एस. वरखड़े, जबलपुर, लक्ष्मी कुडीकल, जगदलपुर, श्री अनिल कुमार जयसवाल, भिलाई, श्री वीरभान साहू, रायपुर, प्रीतम कौर, जगदलपुर, श्री मनीष महान्ती, जगदलपुर, श्री प्रणव बनर्जी, जगदलपुर, शेफालीबाला पीटर, जगदलपुर, श्री यशवर्धन यशोदा, जगदलपुर, श्री शरदचंद्र गौड़, जगदलपुर, श्री सुरेश विश्वकर्मा, जगदलपुर, श्रीमती शांती तिवारी, जगदलपुर, श्री विनित अग्रवाल, जगदलपुर, श्री एन.आर. नायडू, जगदलपुर, श्रीमती मोहिनी ठाकुर, जगदलपुर, श्री जयचंद जैन, जगदलपुर, श्री कुमार प्रवीण सूर्यवंशी, जगदलपुर, श्री भरत गंगादित्य, जगदलपुर, श्री मिनेष कुमार, जगदलपुर श्री शिव शंकर कुटारे, नाराणपुर, सुशील कुमार दत्ता, जगदलपुर, श्री अखिल रायजादा, बिलासपुर

सदस्यः—छत्तीसगढ़ से बाहर—श्रीमती रजनी साहू, मुबई महाराष्ट्र, श्रीमती वंदना सहाय, नागपुर. महाराष्ट्र, श्रीमती माधुरी राउलकर, नागपुर, श्रीमती रीमा चढ्ढा, नागपुर, श्री अरविन्द अवस्थी, मिर्जापुर, यूपी, श्री देव भंडारी, दार्जीलिंग, श्री जगदीशचंद्र शर्मा, घोड़ाखाल नैनीताल, श्रीमती विभा लक्ष्मी, जयपुर, नुपूर शर्मा, भोपाल, मो.जिलानी, चंद्रपुर, डॉ.अशफॉक अहमद, नागपुर, श्री रमेश यादव, मुंबई श्रीमती सुमन शेखर, ठाकुरद्वारा, पालमपुर हि.प्र.

अंतिम पन्ना फोटोग्राफर के लिए—श्री सुनील खेडुलकर

''बस्तर पाति'' कला को समर्पित है। अंतिम रंगीन पन्ना फो[...] लिए ही आरक्षित कर दिया गया है। इस अंक के फोटोग्राफर हैं श्री सुनील खेडुलकर! जिल[...] बैंक के शाखा प्रबंधक, बैडमिंटन के उम्दा खिलाड़ी, हंसमुख, मिलनसार और बारीक दृष्टि व[...] उनके खींचे हुए फोटोग्राफों में प्राकृतिक सौन्दर्य तो रहता ही [...] प्रकृति के रहस्य भी खोजने का प्रयत्न भी दृष्टिगोचर होता है। सामाजिक विसंगतियां, सांस्कृतिक धरोहर कुछ भी नहीं छिप पाता है इनकी ऊर्जावान नजरों से। सरल स्वाभावी खेडुलकर जी के बारे में जब बस्तर पाति को पता चला तो पहले ही संपर्क में उन्होंने ढ़ेरों फोटोग्राफ दे दिये। उन गहराई लिए फोटोग्राफों का अवलोकन हम सब मिलकर समय—समय पर करेंगे और उनके दृष्टिकोण से दुनिया को देखने, समझने का प्रयास करेंगे।

बस्तर पाति का कवर पेज— श्री बंशीलाल विश्वकर्मा

श्री विश्वकर्मा का नाम बस्तर संभाग के साथ—साथ छत्तीसगढ़ के लिए भी अनजाना नहीं है। इनकी चित्रकला विख्यात तो है ही मूर्तिकला में भी सिद्धहस्त हैं। इन्होंने गुण्ड़ाधुर का चित्र बड़ी मेहनत से बनाया है क्योंकि गुण्ड़ाधूर किंवदन्ती पुरूष हैं। उनका वर्णन यहां के लोक गीतों में प्रचुर मात्रा में था परन्तु किसी प्रकार का चित्र उपलब्ध नहीं था। लोक गीतों में गुण्ड़ाधूर के वर्णन से जानकारी एकत्र कर इस छवि का सृजन किया है।

बस्तर पाति के रेखाचित्र— श्री सुरेश विश्वकर्मा

बस्तर संभाग के एकमात्र कार्टूनिस्ट श्री सुरेश विश्वकर्मा पेशे से शिक्षक और साहित्य एवं कला के क्षेत्र में गीत, कविता, रेखाचित्र में नाम कमा चुके हैं। इनके कार्टून यहां से प्रकाशित समाचार पत्रों में लगातार अपनी सार्थक उपस्थिति दर्शाते रहते हैं। देश की बड़ी पत्रिका 'हंस' में इनके रेखाचित्र कमाल कर चुके हैं। भविष्य में इनकी अन्य विधाओं पर भी पाठक गौर फरमायेंगे।